हमारा साहित्य

हमारा
साहित्य

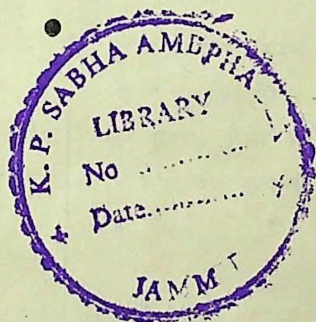




हमारा साहित्य 1978

[जम्मू-कश्मीर के कतिपय हिन्दी कवियों का
जीवन परिचय और उनकी कविता का मूल्यांकन]

•



सम्पादक :

रमेश मेहता

•

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ़ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू ।



सचिव द्वारा जम्मू एण्ड कश्मीर अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, नहर मार्ग, जम्मू—180001 के लिए प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण : 1979

●

आवरण : हरिपाल त्यागी

●

●

कांति ऑफसेट प्रिंटिंग हाऊस, निकट दुर्गा मंदिर, सरवाल रोड, जम्मू में मुद्रित ।

मूल्य : 8 रुपये, 50 पैसे

HAMARA SAHITYA—1978. A Collection of articles on Hindi Poets of J & K and their Poetry.

अपनी बात



'हमारा साहित्य —1978' में जहां एक ओर जम्मू-कश्मीर के कतिपय हिन्दी कवियों की जीवनियों के संदर्भ में उनकी कविता के महत्त्व को आंकने का यत्न किया गया है वहीं दूसरी ओर जम्मू-कश्मीर में लिखी जा रही समकालिक हिन्दी कविता को समग्र राष्ट्रीय हिन्दी कविता-धारा के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित करने के प्रयास भी किए गए हैं।

पं० नीलकंठ, पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री तथा श्री हरदत्त शर्मा से सम्बन्धित लेख इन महापुरुषों के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डालने के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के काल में इस भू-भाग में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों को भी उजागर करते हैं। श्रीवत्स विकल से सम्बन्धित लेख में साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली द्वारा डोगरी उपन्यास "फुल्ल विना डाली" के लिए पांच हज़ार रुपये के (मरणोपरांत) पुरस्कार से सन्मानित डोगरी लेखक के हिन्दी साहित्य-प्रेम की एक झलक मिलती है। डॉ० रतन लाल शांत का लेख कश्मीर के प्रतिष्ठित हिन्दी कवि—मोहन निराश—की कविता और उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण मोड़ों को हमारे समक्ष रखता है जिससे 'कृष्ण मेरा पर्याय' के कवि के साहित्य को समझने-परखने की हमें एक नई दृष्टि मिलती है। शेष सभी लेख समकालीन हिन्दी कविता की विभिन्न धाराओं के संदर्भ में जम्मू-कश्मीर में लिखी जा रही हिन्दी कविता को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते देखे जा सकते हैं। मेरा विनम्र निवेदन है कि हमें इस प्रकार के लेख अधिकाधिक संख्या में दरकार हैं क्योंकि इनसे जहां एक ओर कविता के प्रति अपनी समझ बढ़ाने में हमें सहायता मिलती है वहीं अपनी कविता को पाठकों-समीक्षकों की आंखों से देखने का अवसर भी मिलता है।

हमें यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि कश्मीर में जिन हिन्दी कवियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हिन्दी कविता एवं भाषा के प्रचार-प्रसार

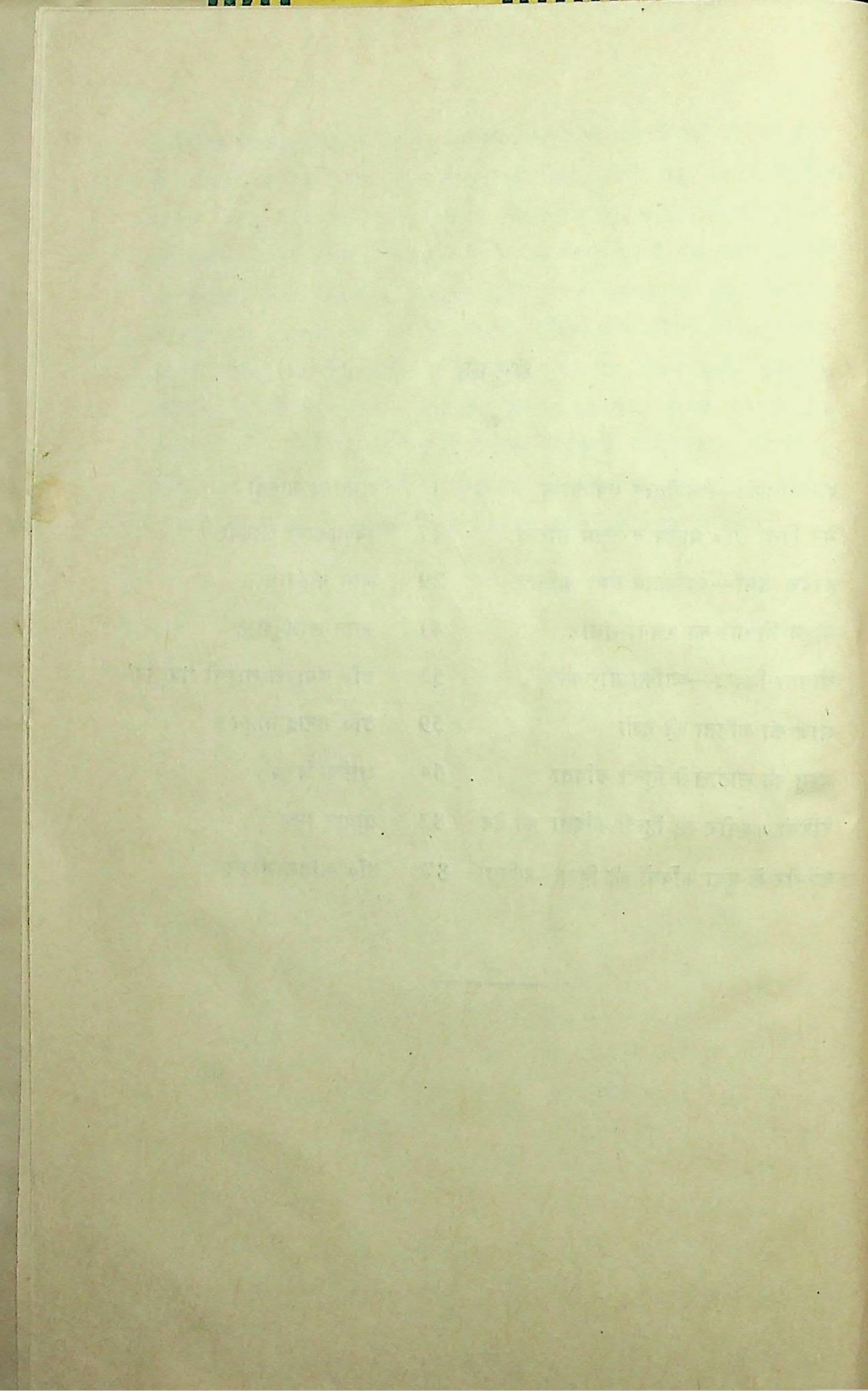
में विशेष योगदान दिया है उन पर वांछित सामग्री इस अंक में नहीं दी जा सकी है। किन्तु आप हमें इस अनियमितता के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते। कारण ?—हमने तो घाटी के अधिकांश विद्वानों से इन कवियों के जीवन और कविता पर लेखनी उठाने का अनुरोध किया था किन्तु खेद है कि उनमें से कोई भी वांछित लेख लिखने को प्रस्तुत नहीं हुआ। इसका एक प्रमुख कारण, सम्भवतः यह रहा हो कि इन कवियों की कविता और जीवनी की ओर इससे पूर्व किसी का ध्यान नहीं गया। परिणामस्वरूप उन पर निश्चयपूर्वक कुछ कह सकने के लिए आधार-सामग्री जुटाने हेतु विद्वानों को लम्बा समय दरकार है। हमें विश्वास है कि निकट भविष्य में कश्मीर के हिन्दी साहित्यकार इस संदर्भ में अपेक्षित शोध करके इन 'अंधेरे के चिरागों' को प्रकाश में लाने का अनुकरणीय प्रयास करके अपनी गौरवशालिनी परम्परा को उद्घाटित अवश्य करेंगे।

—रमेश मेहता

अनुक्रम







पं० नीलकंठ–व्यक्ति एवं काव्य

—रामनाथ शास्त्री

1966 ई० में डोगरी की पहली फिल्म **'गल्लां होइयां बीतियां'** की शूटिंग ज़िला उधमपुर के एक गांव **'चड़िहाई'** में चल रही थी। मैं भी उसी सिलसिले में दो-चार बार वहां गया और वहां मुझे पं० नीलकंठ द्वारा रचित तीन लघु रचनाएं मिलीं। ये रचनाएं थीं—(1) **विवाह कृत्योत्सव** (18 पन्ने), (2) **डक्कुउत्पत्ति** (12 पन्ने), और (3) **कालू कहार की कथा** (8 पन्ने)। तीनों पुस्तिकाएं संवत् 1941 (सन् 1887) में लिथो में छपी थीं। तीनों गद्यात्मक रचनाएं थीं और तीनों की भाषा हिन्दी थी जो लेखक की मातृभाषा डोगरी से खासी प्रभावित थी। इसके बाद मुझे पं० नीलकंठ की कुछ और रचनाएं उपलब्ध हुईं। जैसे—(1) **श्री रणबीर रत्नमाला**, (2) **कथा बावा जित्तो दी**, (3) **कीर्तिविलाससुधा**, (4) **त्रिकुटा तथा दरवेश कथा**, (5) **मंडलीक तथा परिसरवर कथा** और (6) **श्री रणवीर प्रकाश**। इस तरह नीलकंठ कृत ये नौ हिन्दी रचनाएं मुझे मिलीं। और जैसा कि स्वाभाविक था, इन रचनाओं के लेखक का जीवन-वृत्त जानने की जिज्ञासा भी उत्पन्न हुई। इस जिज्ञासा को एक सुनिश्चित दिशा मिली सन् 1973 में।

अप्रेल 1973 में जम्मू के गुलाब भवन में डोगरी रिसर्च इंस्टीच्यूट द्वारा आयोजित एक समारोह में प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री ए० जी० लोन ने **बावा जित्तो—जीवन ते कारक** नामक पुस्तक का विमोचन किया। पुस्तक के लेखक के रूप में मैंने अपने वक्तव्य में पं० नीककंठ का भी उल्लेख किया जिनकी पुस्तिका **कथा बावा जित्तो दी** से मुझे अपनी इस किताब के लिए उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई थी। इस समारोह में डोगरा मंडल, दिल्ली की प्रधान, श्रीमती शकुन्तला सरण भी पधारी थीं। अपने वक्तव्य के बाद मैं उन्हीं के पास जाकर बैठा तो उन्होंने मुझसे कहा—"शास्त्री जी, जिन पं० नीलकंठ की आपने अपने भाषण में चर्चा की है, वे हमारे ही सम्बन्धी थे।"

श्रीमती शकुन्तला सरण को मैं जानता था। वे जम्मू के एक प्रतिष्ठित दुबे परिवार की दुहिता हैं। उनके पति स्व० शिवसरण इंजीनियर थे। उनकी शिक्षा इंगलैंड में हुई थी। श्री शिवसरण के पिता श्री आत्माराम ने भी इंगलैंड में ही शिक्षा प्राप्त की थी। वे रियासत में चीफ इंजीनियर रहे थे। दिल्ली में सरण परिवार की पाश्चात्य रंग में रंगी सम्पन्नता मैंने देखी थी। इस लिए यह सूचना मुझे बड़ी कुतूहलपूर्ण लगी कि सरण-परिवार का सम्बन्ध पं० नीलकंठ से है।

दूसरे दिन मैं श्रीमती शकुन्तला सरण से 'दुबे लॉज', रेज़िडंसी रोड, जम्मू में मिला। उनसे मुझे मालूम हुआ कि नीलकंठ तीन भाई थे। **नीलकंठ, शितिकंठ,** और **रुद्रकंठ**। श्रीमती शकुन्तला सरण के श्वसुर पं० आत्माराम रुद्रकंठ के आत्मज थे। मालूम हुआ कि दूसरे भाई शितिकंठ का परिवार आजकल चिनाब नदी के तट पर स्थित **कान्हा चक्क** नामक गांव में रहता है। मुझे उस परिवार के एक सज्जन, पंडित **अर्यमामित्र** से सम्पर्क करने का सुझाव दिया गया।

शकुन्तला जी ने बतलाया कि जम्मू शहर के मुहल्ला मस्तगढ़ में रुद्रकंठ जी का एक मकान था। नीलकंठ जी भी वहीं रहते थे। उसी मकान को बेचने के सिलसिले में श्रीमती सरण इस बार जम्मू पधारी थीं। दो दिन पहले वह मकान बेच दिया गया था। श्रीमती सरण ने मुझे बतलाया कि "उस पुराने मकान का एक कमरा, शायद नीलकंठ जी के समय से ही बंद रहा है। उस कमरे का ताला तोड़ कर अंदर गए तो दीमक द्वारा चाट ली गई पोथियों का ढेर पड़ा मिला।" श्रीमती शकुन्तला सरण से मिल कर लौटते समय मैं दो विभिन्न दर्पणों में झांकती पं० नीलकंठ की दो विभिन्न तस्वीरों में खोया रहा। एक तस्वीर उनकी रचनाओं के दर्पण में देखी थी। दूसरी तस्वीर उनकी इस पाश्चात्य सभ्यता सम्पन्न वंश-शाखा के वैभवपूर्ण दर्पण में से झांकती हुई लगी। कौतूहल और तीव्र हुआ कि पं० नीलकंठ स्वयं कैसे रहे होंगे? एक विचार आया कि वे राज-दरबार से जुड़े हुए व्यक्ति थे, अवश्य ही व्यावहारिक दृष्टि से भी कुशल और दूरन्देश रहे होंगे। लेकिन मेरा यह अनुमान सही नहीं था। यह तथ्य कान्हाचक के पं० अर्यमामित्र से पत्र-व्यवहार करके और फिर दो बार कान्हाचक जाकर उनसे मिलकर स्पष्ट हुआ।

मैंने श्री अर्यमामित्र को पत्र लिखकर पं० नीलकंठ के सम्बन्ध में विस्तृत

जानकारी देने की प्रार्थना की। पंडित जी बड़े सहृदय निकले, उन्होंने 5 मई 1973 को 6–7 पृष्ठों का एक लम्बा पत्र लिख कर मुझे कृतार्थ किया। उनके इस महत्वपूर्ण पत्र के कुछ अंश इस तरह हैं :—

1. नमस्कार ! आपका लिखा पत्र मिला। चित्त में आपके प्रति श्रद्धा प्रवृत्त हुई। आप डोगरा जनता की उन्नति-जागृति के लिए उत्सुक रहते हैं ऐसा मुझे आपकी डोगरी भाषा की कविताओं को सुनने पर ज्ञात होता रहता है।

2. मेरे पूज्य पूर्वजों के रचे बहुत से पुस्तक तो नष्ट-भ्रष्ट भी हो गए हैं। अपना कुल बृहस्पति-संतति होने के नाते विद्या का भंडार व कवि व तपस्वी होते आए हैं।

3. अब अपना कुल अल्प रह गया है। देवेच्छा ! महाराजे मालदेवादि यजमान थे। (हम) उनके कुलगुरु थे।

4. (नीलकंठ आदि तीन भाइयों के परदादा) ''कमल नयन'' जी ने दुर्गा से पुत्र मांगा। ''देवीदत्त'' नाम रखा। आयु कम दी थी—कि किसी (देव) से लाई हूं। युवावस्था में ही स्वर्ग सिधारे। उनके पुत्र ''भवनाथ'' जी बालक रह गए। उनकी माता बिम्बला (विमला) ने काशी जा कर विद्वानों को सौंपा (कि) विद्वान बना दीजिए। (इनके) दादा भी मर गए हैं, पिता भी। विद्या नष्ट हो रही है। 25 वर्ष की अवस्था तक वहां रहे। पढ़ कर आए। संस्कृत के परम विद्वान थे। उनका रचा ''मंगलाष्टक'' विवाह में पढ़ा जाता है। मेरे पास है। श्री त्रिकुटा तथा श्री शीतला दुर्गा के, उनके बनाए ''स्तोत्र'' भी छपे हुए हैं।

5. पं० भवनाथ जी के तीन पुत्र हुए—श्री 'पं० नीलकंठ', श्री पं० 'शितिकंठ' और पं० 'रुद्रकंठ' जी। शितिकंठ मेरे दादा थे। स्व० आत्माराम जी इंजीनियर, जो विलायत भेजे गए थे, पं० रुद्रकंठ के ही सपूत थे। आत्माराम जी की पुत्रवधू शकुन्तला देवी जी देहली वाली हैं।

6. नीलकंठ जी की संतान नष्ट हो गई। दुःखदायी संतान नष्ट हो गई। मकान भी बेच गए। कुछ शकुन्तला जी ने भी अपने देवर से मिल

कर मेरे दादा जी का मकान बेच दिया, दुकान भी।

7. कान्हाचक का बड़ा इतिहास है। जम्मू का राज्य नष्ट हो चुका था। कान्हाचक के 'दरगाहसिंह' जी पं० भवनाथ जी को कान्हाचक ले आए। महाराजाओं के जम्वाल वंश का कुल-पूज्य जान कर।

"(सिक्खों और अंग्रेजों के पहले युद्ध में) सिक्ख (सैनिक) तो भाग निकले लेकिन (कान्हाचक के) पृथ्वीसिंह, उनके भाई रायकेसरी के सुत विचित्रसिंह अन्तिम घमासान आक्रमण कर, 1800 अंग्रेज मार कर, लहू से लतपत हुए घोड़ों समेत (सुरक्षित) भाग निकले थे। उसी युद्ध में दोषारोपन होने पर महाराजा गुलाब सिंह ने द्रोह किया दारू के स्थान पर सरसों भेजी थी। (कान्हाचक के) इन वीरों को दीवान कृपाराम द्वारा अखनूर बुला कर, अंग्रेजों को प्रसन्न करने के लिए, (श्रीनगर के पास) हरिपर्वत पर बन्दी कर दिया था। संखेप लिख रहा हूं। मेरे पूज्य परदादा श्री पं० भवनाथ जी (कान्हाचक के) इन बहादुरों की योग्यता और शौर्य पर प्रसन्न थे। वे राजा गुलाब सिंह के पास जाकर कठोर शब्दों में लड़े और महाराजा के मुख से 'चले जाओ' का शब्द सुन कर, रुष्ट होकर देश छोड़ कर चले गए। शाप दे गए कि बस तीन 'लड़ी' तक (तेरा) राज चलेगा। तदनन्तर नष्ट हो जावेगा। पानी भी सीमा पार कर पिया था। 16 वर्ष से भी ज्यादा देर तक (उनके लौटने की निष्फल प्रतीक्षा करके) अनन्तर उनका 'पुतला-दाह' किया था।

8. उनके (ही) पुत्र पं० नीलकंठ जी ने (गुलाब सिंह के) उसी वंश के राजों की स्तुति की तथा काम किया, दरबार में नौकरी की। (पर) श्री पं० भवनाथ के शाप से बचाव होना असम्भव था। आज नीलकंठ के उत्तराधिकारियों में कोई नहीं रहा। दो विधवाएं हैं— उनकी पुत्रबहुएं। शंका होती है कि क्यों उन्होंने निज पिता के शाप का उल्लंघन करना था। लेकिन देवेच्छा! उनके (बेटों के) पातकी, कुकर्मी तथा विद्या-विहीन होने के कारण (उनके) कुल की हानि हुई है। मेरे पूर्वज प्रपंची वा पाखंडी न थे।

9. मेरे दादा श्री शितिकंठ जी का स्वर्गवास विक्रम संवत् 1945 (सन्

1888 ई०) में हुआ तथा दादा भाई श्री नीलकंठ जी का स्वर्गवास सं० 1947 (सन् 1890 ई०) में हुआ।

× × × ×

यह पत्र मुझे 7 मई 1973 को मिला था। 15 मई को मैंने पं० अर्यमामित्र को एक और पत्र लिखा। इसमें मैंने श्री नीलकंठ के जीवन के सम्बन्ध में और कई बातों के बारे में जानकारी देने की प्रार्थना की। उनका 29–5–73 का दूसरा पत्र मुझे 31–5–73 को मिला। यह पत्र 'इनलैंड लैटर' (अंतर्देशीय पत्र) के रूप में था। इसमें पं० नीलकंठ के बारे में सिर्फ दो बातें लिखी थीं।

i) श्री नीलकंठजी के दो पुत्र थे—तातो (अर्थात् ताया) श्री राधाकृष्ण जी तथा चाचा श्री देवापति जी। राधाकृष्ण तारघर में नौकर थे। उनके पुत्र पं० शंकरदास मिलट्री स्टोर में (नौकर) थे। देवापति का एक ही लड़का था नरसिंहदास— वह पं० नीलकंठ जी का 'अन्तिम पौत्र' था। हस्पताल जम्मू में मर गया। पता मिलने पर 'आठमें दिन' मैंने (जम्मू जाकर) उसका दाह संस्कार किया था।

ii) पं० नीलकंठ की बनाई हुई बहुत सी रचनाएं तो अब मिलती नहीं हैं।

× × ×

कान्हाचक जाकर मैं पं० अर्यमामित्र जी से मिला। उनके पास मैंने नीलकंठ रचित **रणवीर प्रकाश** की एक खंडित प्रति तथा उनकी दो अन्य लघु रचनाएं **मंडलीक कथा** तथा **विवाह कृत्योत्सव** ही देखीं। **इतिहास प्रकाश** नाम की रचना का केवल मुखपृष्ठ ही उस पुराने बस्ते में बचा था। यह 'टाइटल पेज' मैंने उनसे मांग लिया।

मेरे द्वारा 10–12–1973 को लिखे गए एक और पत्र में पूछे गए कुछ प्रश्नों के उत्तर श्री अर्यमामित्र ने इस प्रकार दिए :—

प्रश्न	उत्तर
1. आपके परिवार का मूल निवास-स्थान कहां था ?	1. जम्मू शहर।

2. आपकी उपजाति ?	2. जम्मू वासी पंडित जम्वाल ही कहाते रहे हैं।
3. पं० नीलकंठ जी की सरकारी नौकरी क्या थी ? उनके 'पद' का नाम ?	3. राज कवि।
4. पं० नीलकंठ की शिक्षा कितनी और कहां हुई ?	4. मेरे ज्ञान में उनकी पढ़ाई घर में ही पं० भवनाथ जी के पास हुई।
5. पं० भवनाथ द्वारा राजा गुलाब सिंह को दिए गए शाप की अवहेलना उनके पुत्र (पं० नीलकंठ) ने क्यों की ?	5. शायद राज-भय से ही वे उनके प्रशंसक बन गए। दरबार में (राजाओं की) प्रशंसात्मक कविता लिख कर जीवन बिताया। बाहिर भी जाते थे राजों के साथ।
6. मस्तगढ़ वाले मकान के बारे में कुछ बताएं।	6. (वह मकान) भवनाथ जी की सम्पत्ति है (था)। उनके तीन पुत्र थे। एक भाग मेरे दादा शितिकंठ जी का था। वह भी हमें नहीं मिल सका। लम्बी कहानी है।

पं० नीलकंठ के बारे में मुझे पं० अर्यमामित्र के पत्रों से इतनी ही जानकारी मिल सकी है। पं० नीलकंठ की मृत्यु के बारे में ही वे एक निश्चित तिथि दे सके हैं कि उनकी मृत्यु सन् 1890 ई० (संवत् 1947 वि०) में हुई।

× × ×

उनकी जो रचनाएं मुझे उपलब्ध है उन्हें सहज ही दो वर्गों में बांटा जा सकता है। एक वे जो अपने आश्रयदाता (महा० रणबीर सिंह) के आदेश का पालन करते हुए लिखी गईं और दूसरी वे जिनकी रचना उन्होंने स्वेच्छा से की। पहले वर्ग में केवल दो रचनाएं आती हैं :—

(1) श्री रणवीर प्रकाश।
(2) श्री रणवीर रत्नमाला।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं हैं :—

(1) कथा बावा जित्तो दी।

(2) मंडलीक कथा। पीर सरवर कथा।

(3) विवाह कृत्योत्सव।

(4) डक्कोत्पत्ति।

(5) कालू कहार कथा।

(6) त्रिकुटा कथा। दरवेश कथा। और

(7) कीर्तिविलास।

पहले वर्ग के अन्तर्गत आने वाली पहली रचना—**श्री रणबीर रत्नमाला** का लगभग दो-तिहाई भाग पद्यात्मक है, बाकी गद्य। इस रचना के मुखपृष्ठ पर यह सूचना अंकित है :—

श्री रघुनाथ जी के यंत्रालय में जंबू नगर निवासी पंडित नीलकंठ जी की फरमाइस से श्री रणवीर रत्नमाला लाला शिब्बा मल्ल जी के अधिकार से छपि संवत् 1941 माघ प्र० 21।

लेकिन पुस्तक के अन्त में जो सूचना अंकित है वह इस प्रकार है :—

संवत् 1942 मघेर प्र० 29 को इह पुस्तक पंडित नीलकंठ ने छपवाया सहर जंबू महल्ले मस्तगढ़ श्रीलखमीनारायण जी के मंदिर पास पंडित नीलकंठ से मिलेगा शुभम्॥

प्रारम्भ तथा अवसान की इन तिथियों के अंतर के लिए शायद यह तथ्य उत्तरदायी रहा हो कि पं० नीलकंठ के आश्रयदाता महा० रणबीर सिंह भाद्रपद 1942 वि० में स्वर्गवासी हो गए थे।

ग्रंथ के प्रारम्भ में मंगलाचरण में दो संस्कृत श्लोक हैं। आगे तीन दोहे इस प्रकार हैं :—

बंदो श्री जगदीस को, गुरु चर्ण धर ध्यान।
गजमुख गौरी पूज कै, वर्णों रतनविधान॥
सप्तद्वीप नव खंड में, भारत खंड अनूप।
ता महि पुर जंबू लसै, सभ देसन को भूप॥
जो सूरज के वंश मै, जंबूपत जमुआल।
सात भूप वर्णन करों, भाषा वचन रसाल॥

इसके आगे दो **कवित्त** छन्दों में डोगरा राजाओं की प्रशस्ति प्रस्तुत **की गई है**। आगे चलकर एक **सवैये** में अपने आश्रयदाता की बड़ाई का बखान इस प्रकार

किया गया है :—

सुंदर चारु विचार धरै, मन-मीतन कों अति प्रीत दिखामें।
जा महि बुद्धि पराक्रम तेज, सुशत्रुन की कर छार उड़ामें॥
मानत वेद - पुराणन - भेद, सुदेव सिआवर से गुण या में।
'कंठ' कहै कुल भूषण जो, अब सो रणवीर हरि मन भामें॥

दोहरा

अकबर आदि जो भए, सभ ने किए उपाय।
ग्रंथ बनाए नेक जिन, परजा के सुखदाय॥
सो चिरकाल बतीत हो, रहयो न नीति-विहार।
ता कारण आज्ञा दई, श्री महीप जगसार॥
ग्रंथ एक अद्‌भुत रचो, नाना रतन विधान।
सकल ग्रंथ-मत-सार ले, भाषा सुगम प्रमांन॥
नीलकंठ कवि हर्ष सुन, ता छिन कियो उपाय।
सकल ग्रंथ-मत-सार ले, भाषा रची बनाय॥
संवत् उंनी सै सुनो, उनताली परमान।
ऋत वसंत, बैसाख में, संग्रह ग्रंथ प्रमांन॥
पंना लाल जुवाहरी, इन्द्रप्रस्थ को होय।
जंबू पुर शोभा धरै, रतन - पारखी सोय॥
पाय संमती ताहु की, अवर ग्रंथ परिमान।
रणवीर रतन माला रची, नाना रतन विधान॥

महाराजा की आज्ञा पाकर पं० नीलकंठ ने बैसाख, 1939 (वि०) में इस ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की और सं० 1941 वि० के माघ महीने में उसे छपने के लिए दिया। भाद्रपद 1942 (वि०) [अर्थात् अगस्त 1885 ई०] में महाराज का देहान्त हो गया। उसके तीन महीने बाद पं० नीलकंठ, छपी हुई इस रचना को उठवा कर अपने निवास-स्थान मुहल्ला मस्तगढ़ में ले गए।

× × ×

श्री रणबीरप्रकाश (हिन्दी वैद्यक ग्रंथ)

पं० नीलकंठ की प्रायः सभी रचनाओं में उनके प्रकाशन-काल की सूचना बड़े स्पष्ट शब्दों में दी गई है। कुछ रचनाओं में उनका लेखन-कार्य शुरू करने-सम्बन्धी सूचना भी दी गई है। श्री रणबीरप्रकाश के सम्बन्ध में ये दोनों प्रकार की सूचनाएं इस प्रकार हैं :—

उन्नी सौ पच्चीस शुभ, संवत् विक्रमजात।
ऋतु वर्षा सावन शुदी, गुरुवार तिथि सात।।
ता दिन फुनि उद्यम कियो, वैद्य-शास्त्र हित जान।
सकल ग्रंथ-मत-सार ले, भाषा रची सुजान।।

और **भाषा** में यह ग्रन्थ इसलिए रचा, क्योंकि :—

भाषा शाखा शास्त्र की, श्रुति स्मृति ज्यों कोय।
शास्त्र संस्कृत कठिन है, भाषा सुगमी होय।।

× × ×

संवत् शशि(1) शुचि(3) नन्द(9) शशि(1), छप्यो प्रथम ही बार।

संवत् 1925 [अर्थात् 1868 ई०] सावन शुदी, गुरुवार के दिन इस वृहद् ग्रन्थ का लेखन आरम्भ हुआ और संवत् 1931 [अर्थात् 1874 ई०] में छप कर यह तैयार हो गया। अर्थात् अनुमानतः पांच, साढ़े पांच वर्षों में पं० नीलकंठ ने इसे लिख कर पूर्ण किया और छः - सात महीनों में यह छप कर उपलब्ध हुआ। स्पष्ट है कि **श्री रणबीर रत्नविधान**, जिसे पं० नीलकंठ ने संवत् 1939 वि० (अर्थात् 1882 ई०) में लिखना शुरू किया, बड़े बाद की रचना है। संवत् 1931 (1874 ई०) और संवत् 1939 (1882 ई०) के बीच के 8–9 वर्षों में लिखी-छपी, पं० नीलकंठ की कोई भी रचना मुझे नहीं मिली और न ही इन 8–9 वर्षों में उनके जीवन या कृतित्व के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध हुई।

पं० नीलकंठ की रचनाओं में उनका यह प्रथम संकलन-ग्रन्थ कलेवर की दृष्टि से भी वृहद् था और उपयोगिता की दृष्टि से भी विशिष्ट था। इसकी उपयोगिता तथा प्रचार का प्रमाण यही है कि 9″ × 11½″ परिमाण के 800 से अधिक पन्नों के इस चिकित्सा-ग्रन्थ की एक हज़ार प्रतियों की दूसरी वृत्ति

(Reprint) विक्रम संवत् 1975 (सन् 1918 ई०) में प्रकाशित हुई।

इस वैद्यक ग्रन्थ का प्रारम्भ भी मंगलाचरण, राजवर्णन और पुरवर्णन से हुआ।

(मंगलाचरण)

गोपति गौरी गिरपति, गुरु गणपति गीर्देव।
नमो चरण-युग ध्यान धर, वर पाऊं यह सेव॥
प्रथम भवानी शारदा, पूजौं विष्णु महेश।
बंदौं विघ्न-निवार जो, गौरीपुत्र गणेश॥

छप्पय :— श्री शंकर शुभ जटाधारं शिर गंग विराजे,
कमल फूल त्रिशूल हाथ वर डमरू साजे।
नीलकंठ फणियर फरे अंग विभूति गाज,
वाम भाग गिरिजा रहे, कोटि रवि द्युति लाज।
चर्म अंग मृगछाल, भाल चन्द शीतल करन,
रोग हरे आनन्द करे, हो प्राणी शंकर शरण॥

× × ×

राज वर्णन—दोहे

श्री किशोरसिंह हि दियो, रघुवर हित वर येह।
तीनों कारण कला-युत, उपजे भूपति गेह॥
तिहि कारण नागर नवल, प्रगट भए सुरराज।
ब्रह्म-कला-युत उदित श्री गुलाबसिंह महाराज॥
विष्णु कला युत शांति मत, ध्यानसिंह बलबीर।
रुद्र कला युत उपज्यो, सुचेतसिंह रणधीर॥
तिह भूपन के वंश में, उपजे कला - निधान।
राजनपत महाराज श्री रणबीरसिंह मतिमान॥
जौं लौं सूरज चंद्रमा, गगन, सुमेरु सुरकाज।
तौं लौं अटल हिमाल वत, चिरंजीव महाराज॥

× × ×

पुर-वर्णन—दोहे

सप्त द्वीप नवखंड में, भारत खंड अनूप।
ता महि पुर जम्बू लसे, सब देसन को भूप॥
अति श्रेष्ठ जम्बू नगर, द्विप उजागर राज।
वर्तत श्रीपुर सों अधिक, इन्द्र पुरी द्युति साज॥

[ग्रन्थ-रचना का आदेश]

नाम रहत जा जगत में, नाम चलत है साथ।
तिह नाम हि के कारणे, कृपादृष्टि रघुनाथ॥
एक दिवस उपकार-हित, हुकम दियो मतिमान।
पंडित श्री जगद्धर हि को, पुनि ज्वाहर वैद्य सुजान॥
ग्रंथ एक अद्भुत रचो, विविध चिकित्सा सार।
जिहि कर प्राणी छुटहिंगे, रोग क्लेश संसार॥

× × ×

इसके आगे ग्रन्थ कर्त्ता ने पुनः दोहा छन्द में, ईश्वर, प्रकृति, परमात्मा-माया तथा मानव के मूल तत्वों का विस्तार से विवेचन किया है। जैसे :—

जो विश्वंभर विश्वगत, विश्वरूप भगवान्।
पांच तत्व सो ध्याइये, घट-घट ज्यों इक भान॥
संपूरण ब्रह्मांड का, सत् चित् आनंद रूप।
परमातम इच्छा-रहित, कारण कर्त्ता भूप॥
स्वयं ब्रह्म की प्रकृति, माया नाम अविनाश।
ज्यों रवि छाया प्रकृति, चैतन्य रूप प्रकाश॥
परमात्मा चैतन्य है, माया जड़ पहिचान।
सो मन माया-संग तें, भ्रमत नर्तकी जान॥
तिह माया जग साजि कर, नाना रूप धरे।
या अनित्य संसार में, नटवर स्वांग करे॥
माया नाम सुप्रकृति, तिह उपजी मती बुद्ध।
ताहि बुद्धि को शरण हो, योगी पावै सिद्ध॥
मह तत्व तिस बुद्धि को, रूप स्वयंवर मान।
अहंकार की उत्पत्ति, यह तत्व सें जान॥

अहंकार के तीन गुण, रज तम सत्व पछान ।
सत रज के संयोग तें, दश इन्द्रिय जिय जान ।।

मन की उत्पत्ति जानिये, सत रज युग संयोग ।
बाह्याभ्यन्तर इन्द्रियन, प्रगट करत सब जोग ।।

प्रकृति पुरुष साधर्म है, जुग अनादि रहि अंत ।
नित व्यापत इह जगत महि, प्रकृति पुरुष जुग तंत ।।

वैद्यक ग्रंथ को फल उदित, मूल इलाज पछान ।
सो इलाज मानुष उचित, देहधार वर जान ।।

चौबी तत्व जीवातमा, इह समूह नरमान ।
तातें प्राणी को उचित, जान तत्व विज्ञान ।।

× × × ×

शब्द स्पर्श रस रूप है, पंचम गंध पछान ।
तन्मात्रा याको कहै, जोगी तत्व ज्ञान ।।

× × ×

काया रूपी देह को, सुख-दुख आप वरेय ।
पाप पुण्य द्वय वास कर, देही नाम धरेय ।।

× × ×

इस ग्रंथ की समाप्ति पर लेखक ने अपना कुल - परिचय इस प्रकार दिया है :—

जम्बू पुर बासी भए, विद्वज्जन सिरमौर ।
कमलनैन पंडित महां, जा सम दूज न और ।।
तिन्ह के देवीदत्त सुत, जिनको श्री भवनाथ ।
नीलकंठ तिन्ह को भयो, सो नित नावत माथ ।।
पढ्यो न शास्त्र कोई, सत्संगत उर धार ।
आज्ञा श्री महाराज की, पायो भाषा - सार ।।

× × ×

कीर्तिविलास

रायल-ऑक्टेवो आकार के कुल 12 पन्नों के इस लघु काव्य में महाराजा रणबीर सिंह की मृत्यु पर उनके दरबार के राज कवि द्वारा महाराजा के

गुणानुवाद और अन्तिम संस्कार आदि का वर्णन किया गया है। महाराजा का जन्म संवत् 1884 वि० [1827 ई०] में हुआ था। वे तीस वर्ष की आयु में, सन् 1856 में राजगद्दी पर बैठे और 28 वर्ष तक शासन-भार का संचालन करके भाद्रपद, संवत् 1942 [अगस्त 1885 ई०] में दिवंगत हुए।

पं० नीलकंठ ने **कीर्तिविलास** नाम की यह लघु काव्य-रचना असुज प्र० 21 संवत् 1942 अर्थात् अपने आश्रयदाता की मृत्यु के अनन्तर एक महीने में लिख कर तैयार की। और "सहर जंबू श्री रघूनाथ जी के यंत्रालय में जंबू नगर निवासी पंडित नीलकंठ जी की फरमाइस से **कीर्तिविलास** भाषा लाला सिवा मल्ल जी के अधिकार में छपा ॥ संवत् 1942 ॥ कार्तिक प्र० 17 ॥ शुभम् ॥

अर्थात् **कीर्तिविलास** महाराजा की मृत्यु के दो महीने बाद छपा। इस प्रशस्ति-काव्य में भी लेखक ने मंगलाचरण, पुर-वर्णन और राजवंश-वर्णन आदि की परिपाटी को दुहराया है और इनमें श्री रणवीर प्रकाश के लिए लिखे गए कुछ पद्यों की ही पुनरावृत्ति की है। इन पद्यों को पढ़ते हुए यह आभास नहीं होता कि कवि नीलकंठ किसी तरह के मानसिक शोक से आकुल हैं। इन पद्यों से यह आभास भी नहीं मिलता कि कोई बड़ी दुर्घटना घट चुकी है। देखिये ये पद्य :—

कुंडली :—

रघुकुल मांहि विचारिये, रक्षक श्री कुलदेव।
बंदो श्रीपद ताहि के, वर्णों रघुकुल भेव ॥
वर्णों रघुकुल भेव, सेव सेवक वरदाई।
त्रिकुटा श्री परमेश्वरी, भैंड़, कालिका माई ॥
नीलकंठ कवि ज्यों कहै, श्री रघुनाथ सहाई।
मिल पांचों रक्षक भए, केवल रघुकुल मांहि ॥

दोहा :— जो सूरज के वंश में, जंबूपत जमूआल।
सात भूप वर्णन करौं, भाषा वचन रसाल ॥

इसके आगे तीन कवित्त छन्दों में 'जमूआल वंश' के इन सात राजाओं के नामों का प्रशस्तिपूर्ण उल्लेख किया गया है। अन्तिम कवित्त यूं है :—

सारे राजवारे संग, साज कै समाज खरे,
बाजत घन बाजे बीच, बाजत नगारे है।

आगे है बहार मौज, वर्तत जो राजनीत—
धारे प्रीत वस्त्र शस्त्र, भूषण सम्हारे है।
होत है हुलास जो, विलास देख राग-रंग,
बैठे सुख संग मौज, देखत अपारे है।
कहे कवि नीलकंठ, श्री श्री रणवीर सिंह,
टेढ़ी मूंछ वारे पै, करोर राज बारे है ॥9॥

× × ×

एक कवित्त में कवि ने महाराजा रणबीरसिंह की उपलब्धियों की चर्चा इस प्रकार की है :—

मंदिर अनेक धाम कंचन से सुभायमान,
गुणिजन मंगवाय नेक तर्जमें दिखाए है।
तीरथ व्रत यज्ञ दान साधन परलोक कियो,
हिए भक्ति-भाव प्रीत राघवगुण गाए है।
दानन के विधान माहि कलपद्रुम जैसो जान,
परहित के काज मान सूरज सम छाए है।
ऐसो महाराज फौज प्रजा को समाज साज,
नीति-जस धार सार प्रीति उर लाए है ॥24॥

दोहा :— नीति जस जग धार के कीनों चित्त विचार।
भू को भार उतारने उतरे अब संसार ॥24॥

ऐसे दिव्यावतारी महाराज जब असाध्य रोग से ग्रसित हो गए तो :—

दोहा :— गऊ - दान गज दान दे, अश्व दान भू - दान।
माणिक मुकता रस घने अन्न अमित परिमान ॥26॥

और आणे ही दिवस आगे बिप्र वेद पढ़न लागे—
भागवत वसिष्ट - सार गीता ज्ञान गावे है।

× × ×

पंडित गुणवान सिद्ध संत वैद्य नेकमान।
रोग अधिक जान ज्ञान सभने सुनाए है ॥30॥

कवित्त :— श्री प्रतापसिंह जी को पास लै बठायो,
आप जुदे-जुदे भेद राज-काज को विचारे है।

सबहि समुझाय धर्म मुलख औ खजाना सौंप–
फौज किले कोट धाम सौंपत सुखारे है।
सेवक सरदार सौंप शत्रु - मित्र बंधु सौंप,
पालन प्रजा को सौंप मुदित निहारे है।
राज्य - व्यवहार तज्यो, क्रम से आहार तज्यो,
वाणी को उचार तज्यो, हरि-ध्यान धारे है ।।31।।
कुंड बनवाय गंगाजल सों भराय बीच–
मंडली बनाय कलश द्वीप चार हारे है।
मंद-मंद खुले नैन वाणी को उचार सिथल,
अधर सों दिखावें राम नाम ये उचारे है।
ताहि छिन परत मोह वेद-विहित करत दान,
फेर बिन वेर देह सिथल निहारे है।
श्री श्री रणवीर सिंह जी के प्राण फोड़–
ब्रह्मण्ड देवलोक को पधारे है ।।33।।

दोहा :— बिताली संवत विक्रमी भाद्र शुक्ल शनिवार।
चतुर्थी को सुरपुर गयो रणवीर सिंह जगसार ।।35।।

दाहकर्म के लिए जाती हुई महाराजा की अर्थी का वर्णन करते हुए नीलकंठ लिखते हैं :—

कवित्त :— आगे कर निसान पीछे कोतल गज अश्व मान,
बाजे घनघोर सोर चहूं ओर छायो है।
पाछै कर विमान कलस कंचनमय वितान तन्यो,
भार जिन भीर रजत कंचन बरसायो है।
रघुनाथ जी के द्वार ठाड़े कर दिखाए सार,
पंडित पढ़ वेद पुष्प वर्षा झर लायो है।
गुमट दर नीचे नदी तीर आम आय मिले,
फौज प्रजा लोक शोक सब ही को दिखायो है ।।38।।

× × ×

चन्दनमय तुलसी की चिता सो बनाय लीनी,
ता पर बिछाय दर्भ तापे फूल डारे हैं।

× × ×

प्रतापी श्री प्रताप सिंह जू ने दाह कर्म किया,
सीताराम, सीताराम सभ ने उचारे है ॥39॥

× × ×

दोहा :— भावी - बस जग जानिये, जग - भावी बलवान् ।
स्वप्नरूप सुख - दुख बने, भावी भाव प्रमाण ॥47॥
रणबीर सिंह ऐसी करी, तैसी करै सु कौन ।
राजनीति भू पर धरी, आप गए सुर भौन ॥49॥



इन उद्धरणों से महाराजा रणबीर सिंह के, राज्यकवि पं० नीलकंठ की काव्य-कृतियों के मूल्यांकन का कार्य-भार सुधी पाठकों को सौंप कर मैं अपन इस लेख को यहीं समाप्त करता हूं ।

C

मेरे पिता पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री

—विष्णुकान्त शास्त्री

पास दिखे, पर दूर रहे जो, मैं वह क्षितिज नाम का देश।
ध्वस्त हुई, जो ध्वनि में सोयीं, मैं उन संस्कृतियों का शेष ॥

अपने पिता गांगेय नरोत्तम शास्त्री के बारे में जब मैं सोचता हूं तो मुझे उनकी ही लिखी ये दो पंक्तियां याद आ जाती हैं। हम चारों भाई उनको बाबू जी कहा करते थे। पिता जी की तुलना में बाबू जी अधिक आत्मीयता-पूर्ण सम्बोधन है किन्तु इस निकटता-सूचक सम्बोधन के बावजूद हम लोगों को वे मर्यादा की एक निश्चित दूरी पर ही रखते थे। और क्या केवल हम लोगों को ··· ··· जहां तक मुझे याद है उनके हजारों परिचितों में कोई ऐसा अन्तरंग नहीं था जो उनसे धोलधप्पा या तू-तड़ाक कर सकता था। वे सचमुच पास दिखने पर भी दूर रहने वाले थे। मर्यादा बोध के साथ-साथ आत्मनिर्भरता का भी द्योतक है यह तथ्य ! किसी दूसरे के साहचर्य के बिना मेरा जीवन अधूरा या अर्थहीन हो जायेगा, ऐसा वे नहीं मानते थे। औरों के साथ सहयोग सामाजिक जीवन के लिए अनिवार्य है, इसे वे स्वीकारते थे और साहित्यिक, धार्मिक या राजनीतिक क्षेत्रों में समानधर्माओं के साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार भी करते थे किन्तु उसकी पहुंच वैयक्तिक जीवन में भी हो, इसे वे आवश्यक नहीं मानते थे। फलतः वे सबके बीच प्रायः अकेले रहा करते थे। घर में भी वे अपना कमरा बन्द रखते थे और जब जिससे बात करना चाहते थे तब उसे बुलवा भेजते थे। उनके दबंग व्यक्तित्व के कारण बचपन में हम लोग उनसे काफी डरा करते थे और जब वे घर से बाहर जाते या भीतर रहते तब हम लोग छिप जाया करते थे। उनके प्रति हम लोगों के मन में भय मिश्रित सम्मान था और हम में से कोई यदि नटखटपन करता या किसी अनुचित बात की जिद करता तो बाबूजी से शिकायत करने की धमकी उसे सही रास्ते पर लाने में प्रायः कारगर हो जाती थी। जैसे परिवार में वैसे ही समाज में भी उनकी धाक थी। उनका वैदुष्य, भव्य रूपाकार, संस्कारी व्यक्तित्व सामने वाले को अभिभूत कर देता था।

घुंघराले बाल, उज्ज्वल गौर वर्ण प्रशस्त ललाट पर शोभित श्री तिलक, सुरमा लगी प्रभावशाली आंखें, तीखी नाक, भरा चेहरा, छोटी छंटी हुई मूंछ, दोहरा बदन, चौड़ा पुष्ट वक्षस्थल, रेशमी कुर्ते या लम्बे कोट पर दुपट्टा, दोनों हाथों की अंगुलियों में अंगूठियां, स्वच्छ धोती, बिना फीते का बढ़िया जूता, हाथ में छड़ी······आभिजात्य, सुरुचि और सम्पन्नता का आभास देने वाली इस दिव्य आकृति के प्रति प्रथम दर्शन में ही समादर उत्पन्न होना स्वाभाविक था। यह समादर उन्हें जहां एक तरफ ऊंचाई देता था, वहीं दूसरी तरफ औरों से अलग भी करता था। इस अलगाव का एक कारण उद्धृत पद की दूसरी पंक्ति में निहित है।

बाबू जी वर्तमान में रहते हुए भी सनातन संस्कृति के उत्तराधिकार के प्रति अतिशय निष्ठावान थे। यहां यह भी स्पष्ट कर दूं कि उनकी दृष्टि में सनातन का अर्थ मुख्यतः पुरातन मूल्यों का संरक्षण ही था। 1920-21 के आन्दोलन में अंश ग्रहण करने के पीछे जो उनकी प्रेरणा थी वह यही थी कि विदेशी शासन के दुष्प्रभाव ने भारतीय चेतना को कुंठित कर रखा है एवं पराधीनता के पाश से मुक्त होकर हम अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुरूप अपने जीवन को ढाल सकेंगे। **मेरा तपोवन** शीर्षक अपनी कविता में उन्होंने अपनी आकांक्षा प्रकट करते हुए लिखा है :—

मेरे मन का चिर आकांक्षित मुदमय, शान्त तपोवन हो।
निर्मल, सुन्दर, सजल, सफल नित सहृदय बुध जन जीवन हो॥

प्रवचन औ स्वाध्याय, यज्ञ, व्रत, जिसमें होते हों अविरल।
'सेवा' जगे, जहाँ पर सोये, भीति, द्वेष, ईर्ष्या प्रतिपल॥

× × ×

ओं तत्सत, की ध्वनि मंजुल, सुखदायक हो नित्य जहां।
सबको सर्वाधिक प्रिय हो वह उन्नततर साहित्य जहां॥

वैदिक युग के तपोवन का स्वप्न था उनकी आंखों में—बाह्य शान्त हो, हृदय शान्त हो, गृहान्तर पशु-पक्षी हों शान्त जहां। वचन शान्त हो, हृदय शान्त हो, आत्मदेव हों शान्त जहां, और रहना पड़ता था उन्हें बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के कलकत्ते में, जहां उन्हीं के शब्दों में, "प्रण में, प्रिय में औ प्राणों में संघर्ष लगा पाषाणों में ?" स्वप्न और वास्तव का यह अन्तर 'भूत-भविष्यत्

में संघर्ष' सा उन्हें लगता था। उनकी यह विशेषता थी कि वे संघर्षों से मुँह मोड़कर सिर्फ स्वप्न विलासी नहीं बने। उनकी सहज स्वीकृति थी, संघर्षों की आग अनोखी छुई छिन-छिन जीवन में, 'इसी आग ने जला जलाकर उनके बाहर को कठोर बना दिया था, जिस आवरण के भीतर करुणा और ममता का अक्षय कोष था, जो विशिष्ट अवसरों पर छलक उठा करता था। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान षड्दर्शनाचार्य पं० कृष्णदयाल शास्त्री के द्वितीय पुत्र रूप में 1900 ई० में उनका जन्म हुआ था। उनके नाना विद्वद्वर पं० नारायण मिश्र थे। उनकी माता श्री रामदेवी भी विदुषी थीं। उनके पितामह या प्रपितामह जम्मू के नगरोटा परमंडल से काशी आकर बसे थे। वे डोगरा ब्राह्मण थे और जम्मू के प्रति उनकी प्रीति अन्त तक बनी रही। हम भाइयों के यज्ञोपवीत एवं विवाह संस्कार उन्होंने जम्मू में ही किये थे।

व्यक्ति के चरित्र के निर्माण में परिस्थितियों का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। कैसी अद्भुत और निर्मम परिस्थितियों में पले-बढ़े थे बाबू जी ? कुल डेढ़-दो वर्ष के थे जब भीषण नौका-दुर्घटना में वे मातृ-हीन हो गये। यही आश्चर्य था कि नाव के टूटे तख्ते पर बहते हुए वे बच कैसे गये ? काशी के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ विद्वान् महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री ने गंगा मैया की कृपा से बचने वाले इस शिशु को गांगेय......गंगा का पुत्र—कहा ! बड़े होकर बाबूजी ने इस आख्या को अपने नाम का पूर्वार्ध ही बना लिया। कष्ट ही में पले-बढ़े। वे अभी बालक ही थे जब उनके पिता स्वर्गवासी हो गये। पढ़ने-लिखने में अत्यन्त मेधावी थे फलत: छात्रवृत्तियां मिलती रहीं। कुल 28 वर्ष की अवस्था में काव्यतीर्थ हुए फिर शास्त्री हुए। उनके बड़े भाई पं० पुरुषोत्तम शास्त्री भी व्याकरणाचार्य थे। महामना पं० मदनमोहन मालवीय एवं काशी नरेश भी उनकी प्रतिभा से प्रभावित थे। कुल 20 वर्ष की अवस्था में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक हुए और फिर कुछ ही महीनों बाद उसका परित्याग कर 1920–21 के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। व्याकरणाचार्य के अन्तिम खंड की परीक्षा भी इसी कारण उन्होंने नहीं दी। 'असहयोग संस्कृत छात्र समिति' के अध्यक्ष के रूप में 'तेज प्रचार कर' उन्होंने काशी के तरुण समाज को स्वाधीनता-संग्राम में सम्मिलित होने के लिए उत्साहित किया। उनकी इस क्षमता से प्रभावित होकर डॉ० भगवानदास ने नव-गठित राष्ट्रीय शिक्षा संस्था काशी विद्यापीठ में उन्हें संस्कृत-हिन्दी का प्राध्यापक नियुक्त किया

करीब डेढ़ दो वर्ष वहां काम करने के बाद वे कलकत्ते चले आये जहां 1923 ई० में पं० विनायक मिश्र के समृद्ध घराने में श्रीमती रूपेश्वरी देवी से विवाह हुआ। उन दिनों उस घराने के वृहत्तर परिवार में घोर अन्तर्कलह चल रहा था जिसके परिणाम स्वरूप कुछ ही दिनों बाद सम्पत्ति-रक्षा के लिए उन्हें सात-आठ वर्षों तक कई मामले-मुकदमों में उलझे रहना पड़ा जिनमें दो-दो बार फौजदारी भी हो गयी। अन्त में एक सम्मान-जनक समझौते के अनुसार विवाद हल हुए और तदनन्तर उनकी आर्थिक स्थिति अन्त तक सन्तोषजनक रही।

बचपन से ही अपने पांवों पर खड़े होने की विवशता और लम्बे समय तक किये कठिन संघर्षों ने उन्हें अपूर्व दृढ़ता प्रदान की थी। वे स्वयंनिर्मित व्यक्ति थे और एक बार निर्णय कर लेने पर उससे डिगते नहीं थे। उस मनस्वी विद्वान को अपनी विकास-यात्रा में जहां महामना मालवीय, डा० भगवानदास, श्री श्रीप्रकाश, आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी, आ० रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्याम सुन्दर दास, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन आदि का स्नेह-सहयोग प्राप्त हुआ था वहीं बहुतों का विरोध-विश्वासघात भी झेलना पड़ा था। दूसरी कोटि के अनुभवों की अधिकता से पीड़ित होकर वे कह उठे थे :—

दुनिया के छलछिद्रों से जो ऊब उठा, मैं वह उच्छवास।
स्वार्थमयी मित्रों की मति से विचलित जो, मैं वह विश्वास॥

इसकी प्रतिक्रिया उनके व्यवहार में भी हुई थी। वे न तो जल्दी किसी पर भरोसा करते थे न किसी को अपने मन की बात सहज में बताते थे। कुछ काम-काज की अधिकता, कुछ मर्यादाबोध, कुछ अकेले रहने के अभ्यास के कारण वे समाज में ज्यादा घुलते-मिलते नहीं थे। कठोरता के इस बाह्य आवरण के भीतर उनका भावुक कवि-मन करुणा, कोमलता, प्रीति और भक्ति से ओतप्रोत था। इसके प्रमाण उनकी रचनाओं में भी है और उनके व्यवहार में भी।

बचपन में ही माता-पिता के वात्सल्य से वंचित हो जाने की पीड़ा उन्हें बराबर सालती रही। अपनी कविता पुस्तक 'मालिनी-मन्दिर' उन्होंने अपनी मां को समर्पित की है। उस छोटे से समर्पण लेख में उनकी आन्तरिक भावुकता की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। 'समर्पण' के अन्त की कविता पंक्तियां हैं :—

"स्पन्दित" करें तुम्हारा अंचल, मां ? मेरे प्राणों के गीत।
इन श्वासों को—इन श्वासों ने कभी किया था जहां पुनीत॥

अपने माता-पिता का श्राद्ध भी वे बहुत लगन और श्रद्धा से करते थे। आर्थिक कष्ट ग्रस्त विद्वानों और साहित्यकारों की सेवा सहायता भी वे मुक्त हृदय से किया करते थे। पं० पद्मसिंह शर्मा जब अपनी पुस्तकों के प्रकाशनार्थ कलकत्ते आये थे तो उन्होंने उन्हें अपने यहां ही कई महीनों तक ठहराया था। संस्कृत के विद्वानों की सार-सम्हार वे बहुत आत्मीयता के साथ करते थे। कलकत्ते में ही नहीं काशी, हरिद्वार, जम्मू आदि जहां जाते वहां वहां पंडित-पूजन अवश्य करते थे। कलकत्ते की पंडित सभाओं में वे संस्कृत में धारा-प्रवाह व्याख्यान देकर विद्वानों को सांस्कृतिक गरिमा बनाये रखने की बराबर प्रेरणा दिया करते थे। पूजा के बाद स्तुति करते समय प्रायः उनकी आंखों में आंसू आ जाते थे। वे आलवन्दार स्तोत्र के श्लोकों को बहुत मीठी, करुण लय से पढ़ा करते थे। यह श्लोक उन्हें बहुत प्रिय था :—

अपराधसहस्त्रभाजनं, पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे, कृपया केवलमात्मसात् कुरू॥

अर्थात् सहस्त्रों अपराध करने वाले, भयंकर संसार समुद्र में पड़े इस निराश्रित शरणागत को हे हरि, केवल कृपा के कारण अपना लीजिये ? उन्होंने करुणामय की केवल कृपा की ही कामना नहीं की थी, प्यार की भी याचना की थी। किन्तु उस प्यार की महिमा यह है कि जिसे उसका स्पर्श मिलता है, वह परदुःखकातर और स्वयं करुणामय हो जाता है। उन्हीं का पंक्तियां हैं :—

अन्तर अन्तर की पीड़ा को जो अन्तरवासी जाने।
जिससे छू गांगेय जीव ये जीवन को पावन मानें॥
करुणामय ही कर देता जो, सबको बनकर हार।
वह अनुभवमय, मिले सिद्धिमय करुणामय का प्यार॥

अपने आश्रितों के सुख में वे भले शामिल न हों, दुःख में अवश्य शामिल होते थे। परीक्षा आदि में असफल हो जाने पर वे बच्चों को डांटते फटकारते नहीं थे, फिर से मेहनत से तैयारी करने के लिए उत्साहित करते थे। अपनी कविता पुस्तक का नाम **'करुणा तरंगिणी'** रखा था उन्होंने और उसकी व्याख्या करते हुए संकेत दिया था कि जगत् में व्याप्त विषमता की पीड़ा से द्रवित चित्त की ही कृति है यह। उन्हींके शब्दों में :—

निरख निरख ऐसी अस्थिरता आयी उन्मन रंगिणी ।
सहृदय ममता की आंखों से निकली करुण तरंगिणी ।।

साहित्य उनकी साधना का क्षेत्र था। जीवन-संघर्ष की थकन दूर करने के लिए और नये सृजन की प्रेरणा के लिए वे उसका आश्रय ग्रहण करते थे, केवल मनोरंजन या भाषा-शैली के अलंकरण के लिए नहीं। कला कला के लिए है और जीवन के लिए भी, यह उनका प्रिय वाक्य था। उन्होंने कई निबन्ध भी लिखे हैं किन्तु मूलतः वे कवि थे। उनकी कविताओं में देशभक्ति, करुणा, साहस, प्रकृति-प्रेम एवं सांस्कृतिक चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। द्विवेदी युग और छायावादी युग की विशेषताएं उनकी रचनाओं में सहज ही परिलक्षित होती हैं, फिर भी प्रधानता द्विवेदी-युगीन मनोभावों की ही है।

'घायल कोकिल' नामक अपनी एक कविता में अन्योक्ति की शैली पर भारत को "बाग" के रूप में प्रस्तुत करते हुए देश की पीड़ा को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया :—

दिन बीत गये गिनते कितने, नहीं आई बहार यहां फिर से।
यह **बाग** जो सूना हुआ सो हुआ, पनपा, न फला, न सजा चिर से ।।
उन व्याधों की टोली से लुंठित हो, इसके तरुवृन्द रहे गिर से।
यह **घायल कोकिल** देख रहा, युग नैन हुए अब अस्थिर से ।।

सवैया छन्द में लिखी इस कविता का समापन किन्तु आंसुओं से सिंची आशा में हुआ है, निराशा में नहीं :—

इन दीनों की आह दयामय के दरदी श्रवणों में पड़ेगी कभी।
इन आंसुओं से सिंची भूमि में हां, वह प्यारी बहार फिरेगी कभी ।।

"सुप्त बीजों का जागरण" उनकी एक प्रभावशाली कविता है। भूमि के नीचे दबे बीज जिस तरह अमृतजल पाकर सारी बाधाओं को अमान्य कर सिर उठाकर खड़े हो जाते हैं उसी तरह मनस्वी व्यक्ति भी बाधाओं को पछाड़कर साहसपूर्वक ऊपर उठा करते हैं :—

भूमि में सुप्त यहां पर हम थे
सदा मंडराते ऊपर गम थे
उन्नति के आसार बहुत कम थे

फिर भी साहस से सिर आज उठाते हैं।
अमृत जल पाते ही अमर बन जाते हैं।।

उनकी कविताओं में मर्यादित प्रेम की शिष्ट झलक भी है। उनकी सुधि, सखि हे कल्पना लोक की, प्रवासी के उद्गार जैसी कविताओं में प्रीति की कसक विद्यमान है। सुधि की आरंभिक पंक्तियां हैं :—

मोहक भाव भरी
कान्ति सुधा सरसी
तत्क्षण तृप्तिकरी
मूर्त्ति दिखी जिनकी।
आयी ··· सुधि उनकी।।

किन्तु "लालसा लोक की" वृत्ति पर नियंत्रण रखने वाला "विराग" भी उन्हें प्रिय था तभी उन्होंने लिखा था :—

मेरा प्रिय विराग वह आया।
सरल, विमल, निःस्पृह हितकारी
सुहृद नयन भर आया।

उनका प्रकृति प्रेग अद्भुत था। तरुणाई में ही काशी के निकट बदेवली गांव में अपने स्नेहभाजनों के निकट वे कई कई दिनों तक रहते और वहां की ग्रामीण शोभा का आनन्द लेते। कलकत्ते में उनका एक बहुत प्रिय स्थल था "एग्रीकल्चरल ऐंड हॉर्टिकल्चरल सोसाइटी" का उद्यान जिसकी वार्षिक पुष्प प्रदर्शनी में वे अवश्य जाया करते थे, हम लोगों को भी ले जाते थे। उसके अंग्रेज़ अधिकारी श्री लंकास्टर से उनका स्नेह सद्भाव था। फूलों, पेड़-पौधों की उनकी जानकारी विस्तृत थी। उन्होंने अपने घर में भी फूलों के कुछ गमले रखे थे। कलकत्ते में ही अपनी एक जमीन में उन्होंने अपने शौक की एक छोटी सी बगिया ही लगा रखी थी, जिसमें अनेक प्रकार के देशी-विदेशी फूलों के पौधे तो थे ही, बहुत सी जड़ी-बूटियां भी थीं। वे साहित्य के साथ ही साथ आयुर्बेद और ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने आयुर्वेदशास्त्री की उपाधि प्राप्त की थी और बंगाल सरकार से मान्यता-प्राप्त रजिस्टर्ड कविराज (वैद्य) भी थे। बंगला में कविराज का अर्थ वैद्य भी होता है। इस तरह वे साहित्य और आयुर्वेद दोनों की दृष्टि से कविराज थे। जीवन के शेष भाग में वे कलकत्ते के

निकटस्थ बांसधुनी अंचल में खेती करवाना चाहते थे किन्तु उसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल पायी।

हां तो मैं कह रहा था कि वे सच्चे प्रकृति प्रेमी थे। जीवन के अनुरूप ही काव्य में भी इस प्रवृत्ति का कलात्मक प्रतिफल हुआ था। उनकी एक कविता पुस्तक ही है 'मालिनी मन्दिर या फूलों की दुनियां।' इस पुस्तक में देशी-विदेशी अनेक फूलों पर उनकी रम्य कविताएं संगृहीत हैं। उनकी एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने विदेशी फूलों के नामों की ध्वनि के अनुरूप उनके भारतीय नाम भी रखे हैं, उदाहरण के लिए वे ऐंटीकोना को अन्तिकोण, आइयौतिया को आयपुण्या, डालिया को दलीय कुसुम, भारविना को वरवीणा, आष्टर को आस्तर कहा करते थे। यह कविता पुस्तक हिन्दी साहित्य में अपनी तरह की अकेली ही है। पुष्पों अर्थात् 'वनदेवी के नयनों' को पुष्पांजलि अर्पित करते हुए उन्हों ने लिखा था :—

फूलों से फूला यह मानस, लहरें करती हैं हलचल।
हंस हर्षमय हो गुण गायें, मोती दें जयमाल विमल ।।

हृदय-नयन थे प्रणत प्रणय से, सुमनों के प्रति पल-पल पर।
इन सुरभित गीतों की है, यह पुष्पाँजलि प्रिय पुष्पों पर ।।

इस पुस्तक में तुलसीदल, बिल्वपत्र, धतूरा, केवड़ा आदि पर रचित कविताओं में उनकी सांस्कृतिक चेतना उभर कर आयी है तो पुलकित केला, चकित चमेली, जूही जरा जगी है, गुलाब की माला जैसी कविताओं में उनकी भावुक स्वच्छन्दता झलकी है। तुलसीदल की वन्दना, जहां एक ओर :—

वे ग्राम-हवा को शोधित करते, हरते मादकता का दोष।
विविध चिकित्सा में तुम चलते पूजा में देते सन्तोष ।।"

कह कर करते थे, वहीं दूसरी ओर उसको पापहारी पावनता के लिए भी करते थे :—

सत्यदेव-प्रिय, मूर्त्त सत्य हे, हे शिव, हे सुन्दर, निर्मल।
धन्य धन्य प्रिय कथा तुम्हारी, धन्य धन्य तुम तुलसीदल ।।

फूलों को देखकर प्रेम की भावना का जागना स्वाभाविक ही है। 'पुलकित बेला' की रुचिर हृदयहारी चन्द्र सी तृप्तिकारी छवि को देखकर वे कह उठे थे :—

नवल रुचिर 'तारा' तीर से छू गया सा।
उस सरस हवा की सांस को पी गया सा॥
मृदुल हृदय - प्रेमी, देख माधुर्य वेला।
मधुमय अलबेला आज बेला खिला है॥

जब वे देखते थे कि : "हर डाल में, हर हाल में है हंस रही गुल चांदनी", और "प्रिय स्पर्श, रूप, सौरभ। तप-पुंज प्राप्त वैभव। वह दिव्य देविका सी। जूही जरा जगी है।" तो उन्हें लगता था कि अपने जीवन को विकसित, सुरभित, मधुमय बनाने का वरदान पुष्पों से ही मांगना चाहिए। इसीलिए उन्हें सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था :

निर्मलता के ललित केन्द्र हे, संजीवन वह जीवन दो।
हे माधुर्य निधान प्राणप्रिय, मुझे मधुर 'मधु सा मन' दो॥

जिस प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान पिपासु भारतीय चित्त देश-विदेश की सीमाओं का अतिक्रमण कर कह उठा था 'आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' (सब दिशाओं से मिले शुभ ज्ञान), उसी प्रकार शोभा, सुन्दरता के क्षेत्र में भी ये सीमाएं प्रेमी हृदय को बांध नहीं पातीं। आकार (आस्तर) की शोभा पर रीझकर उन्होंने लिखा था :—

तुम अरुण, नील, प्रिय सित हो।
तुम तरुणी के 'विहसित' हो॥
तुम प्यारे लगते श्री से।
हे परदेशी ? देशी से।

जब परदेशी 'देशी' के सदृश प्रिय लग सकता है तो उससे सद्‌गुणों की याचना भी की जा सकती है। विदेशी 'आइयोनिया' को अपनाते समय उसे उन्होंने 'आयपुण्या' की संज्ञा देकर उससे प्रार्थना की थी :

आयपुण्ये ! आलि ! छबिमयि !
नित्य नूतन 'राग' दो।
सखि ! निरन्तर फूलने का
हृदय को वरदान दो !

किन्तु फूल खिलते हैं तो मुरझाते भी हैं, **"हमें प्रिय फूले फूले फूल। सदा जो सौरभ दें अनुकूल"** कहना ही फूलों के सच्चे प्रेम का प्रमाण देना नहीं है।

"मुरझी माला" और **"सूखे हुए ये फूल"** शीर्षक कविताओं में व्यक्त समवेदना यदि पुष्पप्रेमी हृदय की करुण व्यथा को उजागर करती है तो **"मातृभूमि का परम प्रेम मधु"** धारण करने वाले सूखकर झरे फूलों के प्रति अर्पित यह श्रद्धांजलि उस हृदय की आस्थायुक्त प्रणति सी लगती है :—

> परम मनस्वी, सदा समुन्नत, कठिन तपस्या से सूखे ।
> लीन हुए पृथ्वी में प्यारे उचित मान के ये भूखे ।।
> कष्ट सहिष्णु, आत्म बलिदाता, ये हैं अनुपम प्रकृति रचे ।
> सकल लोकहित, निज सुखत्यागी, मंगलमय गुण रत्न खचे ।।

इन पंक्तियों में वर्णित फूलों के बहुत से गुण बाबूजी में भी थे । जीवन के उत्तरार्ध में वे आर्थिक कष्टों से मुक्त हो गये थे किन्तु तब भी कर्मठतापूर्वक लोकहितकर कार्यों में लगे रहते थे । अपनी मान्यताओं पर दृढ़ रहकर उनकी सिद्धि के लिए कष्टवरण करने से वे कभी नहीं सकुचाये । धार्मिकता को वे भारतीयता का अभिन्न अंग मानते थे । इसीलिए बढ़ती हुई नास्तिकता और धर्म के प्रति अनास्था से वे क्षुब्ध रहते थे । "गोरक्षा" उनके जीवन का बड़ा व्रत था । जब तक वे जीवित रहे, घर में दो-तीन गायें बराबर रहीं । स्वामी करपात्री जी एवं कृष्ण बोधाश्रम जी के नेतृत्व में गोरक्षा के आन्दोलन में अंश ग्रहण करने के लिए 1947-48 में वे दिल्ली भी गये थे और उसके लिए कारावरण भी किया था । **"गौ अवध्य है, गौ अवध्य है, यह उद्घोषण हो"** शीर्षक उनकी कविता आन्दोलनकारियों में बहुत लोकप्रिय हुई थी और बाद में कल्याण में प्रकाशित भी हुई थी ।

पिता अपनी सन्तानों के माध्यम से अपनी अपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करना भी चाहता है । उनकी इच्छा थी कि मैं "वनस्पति-विज्ञानी" बनूं पर बी० एस० सी० करने के बाद विज्ञान से मेरा मन विद्रोह कर बैठा । फिर वे चाहते थे कि मैं 'ऐडवोकेट' बनूं, मैंने एल० एल० बी० की परीक्षा पास तो की किन्तु कानूनी पेशे की ओर भी मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई । भगवान की कृपा से मैं हिन्दी साहित्य का प्राध्यापक नियुक्त हुआ…कलकत्ता विश्वविद्यालय में । उन्होंने सम्पूर्ण हृदय से मुझे आशीर्वाद दिया । वे स्वयं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं काशी विद्यापीठ के प्राध्यापक रह चुके थे । यह हम लोगों की वंशगत वृत्ति थी । बाबू जी उसके सुख-दुख दोनों के जानकार थे । उन्होंने यही कहा था मुझ से कि परिश्रमपूर्वक तैयारी करके पढ़ाओगे तो तुम्हें कभी कोई असुविधा नहीं

होगी। मुझे परिश्रम करना ही पड़ता था। एम० ए० पास करने के तुरन्त बाद एम० ए० की कक्षाएं लेना आसान काम नहीं था। मैं रात दिन कक्षा के व्याख्यानों की तैयारी में जुटा रहता। बाबू जी के कमरे के बगल में ही मेरा कमरा था। वे देखते, उन्हें लगता कि अधिक परिश्रम के कारण मैं बीमार हो जा सकता हूं। पर उन्होंने मुझे कुछ नहीं कहा, मेरे तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ० सत्येन्द्र से अनुरोध किया कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये अधिक परिश्रम करने से मुझे मना कर दें। जब डॉ० सत्येन्द्र ने मुझ से कहा कि तुम्हारे पिता जी मुझसे यह कह रहे थे तो मुझे लगा कि बाबूजी का वात्सल्य कितना मृदुल है।

बड़े हो जाने पर मैंने एक दो बार उनसे बहस करने की भी धृष्टता की थी। मैं सनातन का अर्थ सिर्फ पुरातन न स्वीकार कर ऐसी अविच्छिन्न परम्परा मानता था और हूं जो अपने को नित्य नूतन करती चलती है। इस दृष्टि से आधुनिकता के कई गुणों को आत्मसात करना भारतीय संस्कृति के लिए अनिवार्य मानता हूं। हम दोनों एक दूसरे की स्थिति समझते थे और असहमत होने के लिए सहमत थे। मूल्य चुका कर पाया गया विश्वास मतभेद के बावजूद समादर की सृष्टि करता है, यह बात हम दोनों पर भी लागू थी।

बाबूजी का स्वास्थ्य किसी के लिए भी ईर्ष्या का विषय हो सकता था। वे काफी तेज चलते थे और उनके साथ बने रहने के लिए हम लोगों को अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता था। नियमित व्यायाम, सदाचार और युक्त आहार-विहार के फलस्वरूप उनका शरीर जैसा कसा हुआ था, वैसा ही तेजोमय था उनका मुखमंडल। वर्षों के बाद वे बीमार पड़े 1955 के मार्च में और फिर उठ नहीं सके। बीमारी की स्थिति में उनकी सेवा करते समय मैं उनसे उनके प्रिय श्लोक सुना करता था। वे महाकवि क्षेमेन्द्र के इस श्लोक को अपनी **"आराम कुर्सी"** कहा करते थे :—

परिश्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त विश्राम्यतां।
स्वयं भवति यद्यथा भवति तन्तथा नान्यथा॥
अतीतमननुस्मरन्नपिच भाव्यसंकल्पयन्।
अतर्कित गमागमाननुभवामि भोगानहम्॥

अर्थात् ओ रे चित्त, क्यों व्यर्थ इधर उधर चक्कर काटता फिरता है, कभी तो विश्राम कर। भली भांति समझ ले, जैसा स्वयमेव होता है, वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता। अतीत को बिना सोचे, भविष्य का संकल्प किये

बिना, अतर्कित रूप से आने जाने वाले भोगों का मैं अनुभव करता रहता हूं। मानसिक शान्ति के लिए ऐसी स्थिति सचमुच लाभदायक है, पर ऐसी मानसिकता की रचना कितनी कठिन है ? एक हद तक ही बाबू जी इस मानसिकता का विकास कर पाये थे।

कुल पचपन वर्ष की अवस्था में 27-10-55 को वे स्वर्गवासी हुए। बहुत कुछ करने, लिखने की आकांक्षा थी उनके मन में, वे पारिवारिक कार्यों से निवृत्त होने की योजना भी बना रहे थे। पर उनके पहले ही मृत्यु ने उन्हें जगत से ही निवृत्त कर दिया। उन्हीं की पंक्तियां याद आ रही हैं :—

भरी हुई हैं बड़ी हसरतें मन में, नहीं ठिकाना है।
किन्तु न जाने कब किसने हा ? कहां यहां मर जाना है।।

तो क्या मरण के आगे जीवन लाचार है ? मरण की भीति को काटकर भी जीना संभव है यदि हम यह समझ लें कि केवल शरीर से जीना ही जीना नहीं है। बड़े उद्देश्यों के प्रति समर्पित जीवन अपने मन की दुर्बलताओं पर नियंत्रण रख कर कर्मठ भाव से जीता है। उसके लक्ष्य की पूर्ति के मध्य मृत्यु आतंक बनकर नहीं आती, वह तो उसके स्वागत की तैयारी अपने आचरण द्वारा करता ही रहता है और इसीलिए शरीर के शान्त हो जाने पर भी वह जन-मन में जीता रहता है। उसकी ये पंक्तियां वस्तुतः प्रेरणामय हैं :—

जीना हो, इस मन की रखवारी
जीना हो, मरने की तैयारी।
जीना हो, नित कर्मठता भीना
जीना हो, बस जन-मन में जीना।



हरदत्त शर्मा : व्यक्तित्व तथा कृतित्व

—ओम गोस्वामी

जीवन वृत्त :— डोगरा-अंचल के जिन साहित्यकारों ने हिन्दी-भाषा तथा हिन्दू-संस्कृति को अपना-आप पूर्णतया अर्पित किया है उनमें पं० हरदत्त शर्मा का नाम सर्वोपरि है। इस अहिन्दी-भाषी प्रदेश की मरुभूमि में उन्होंने अपनी कलित रस-धारा से हिन्दी के पौधे को सींचा। काव्य प्रणयन के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये अपने साधनों से बाहर जाकर 'दीपक' नामक एक ऐंग्लो-हिन्दी साप्ताहिक पत्र जम्मू से जारी किया था। इसमें प्रकाशित सामग्री में अधिकांश का स्वर सुधारवादी हुआ करता था। राष्ट्रीय स्तर पर भी उन दिनों हिन्दी साहित्य में इतिवृत्तात्मकता का बोल-बाला था। अतएव हिन्दी भाषा के उन्नयन में 'दीपक' का ऐतिहासिक महत्व आज भी अक्षुण्ण है। दीपक का उद्देश्य उन्होंने इस वाक्य से रूपायित किया है :—

संदिग्ध विद्युत्तेज में, क्यों हो रहा तू गौण है।
दीपक दिखा दे देश को कल्याण मार्ग कौन है॥

इस पत्र का पेट भरने के लिये उन्हें अपने साधनों से अधिक काम करना पड़ा। एवं धन का जुगाड़ भी करना पड़ा, जिससे उनकी आर्थिक दशा डांवाडोल हो उठी थी।

अन्ततः सन् 1948 ई० में उन्हें जम्मू छोड़ कर बम्बई जाना पड़ा। बम्बई में उनका वास गुमनामी के अंधेरे से ग्रस्त रहा। जीविका के लिये वे वहां के प्रसिद्ध 'वेङ्कटेश्वर प्रेस' में जी-तोड़ मेहनत करते रहे। अन्ततः 13 अप्रेल 1956 को बोरीवली, बम्बई में उन्होंने अपनी संघर्ष-यात्रा समाप्त की। अपने अन्तिम दिनों में वे दमे की उग्रता से दो-चार थे। उनके अवसान पर 'श्री वेङ्कटेश्वर समाचार' के चैत्र सुदी 10 संवत् 2013 के अंक में पृष्ठ नं० 9 पर वेङ्कटेश्वर प्रेस परिवार द्वारा उन्हें भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इसका

शीर्षक है **"महान विद्वान का आकस्मिक निधन।"** इसके अनुसार "इधर प्रायः छः या सात वर्षों से आप जम्मू छोड़कर बम्बई चले आये थे और तब से यहीं रह रहे थे। आपकी स्तुत्य सेवा हमारे श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस के शास्त्री विभाग को प्रधान शास्त्री के रूप में प्राप्त हुई, जिसका वह अन्त तक अत्यन्त योग्यता और निष्ठापूर्वक संचालन करते रहे। शास्त्री जी का स्वास्थ्य इधर कुछ समय से गिरा हुआ चल रहा था तथा दमे की पुरानी बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया था। पंडित जी का जर्जर शरीर सम्भवतः दमे के तीव्र प्रहार सहन करने में असमर्थ रहा और इस प्रकार वह वृद्ध तपस्वी सर्वदा के लिये गत 13 अप्रेल को प्रातः काल अपनी नश्वर काया संसार में छोड़ कर अनंत में विलीन हो गया······।"

अपने लोगों और अपनी धरती से दूर बम्बई में एकाकी जीवन की यातना झेलते हुये, संघर्षमय जीवन की राह से गुज़रते हुये अन्ततः नियति के आगे समर्पण करने वाले हरदत्त पहले भी जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देख चुके थे। उन्होंने दो-दो हाथों से खुशियां उलीची थीं और गम सहे थे। उनका जन्म जम्मू के उत्तरवर्ती गांव **'पलोहड़ा'** के पं० हरिश्चन्द्र जी के घर 1890 ई० को हुआ था। इनके जन्म पर घर में खुशी के संग-संग अन्देशे की घटाएं भी छा रही थीं। अनागत को लेकर एक भय-सा व्याप्त था, क्योंकि इनसे पूर्व दैव-कोप से इनके दो भाई मर चुके थे, तीसरे जन्मांध हो गए थे तथा चौथी सन्तान देवी चांद बाल-वैधव्य का अभिशाप ढो रही थीं। हरदत्त जी पांचवीं सन्तान थे। दैव-कोप के साथ एक कहानी जुड़ी हुई थी। युवावस्था में हरदत्त के पिता पं० हरिश्चन्द्र जी जम्मू में महाराजा के **'बन्दूकियों'** में रहे थे। एक बार शिकार के दौरान उन्होंने मादा-सूअर को मार डाला था। इसे उठाने जब पास पहुंचे तो देखा दूध पीते सात बच्चे मृत मां के आस-पास लोट रहे हैं। बिन मां की औलाद पर तरस खा कर इन्होंने सातों बच्चों को तलवार के हवाले किया। बाद में अपनी सन्तान से विछोह होने पर इन्हें मादा सूअर और उसके निर्दोष बच्चों की कातरता रुला देती। वे भाव-विह्वल होकर महादेव से क्षमा की प्रार्थना करते। पांचवीं सन्तान को महादेव का प्रसाद मानकर इन्होंने उसका नाम हरदत्त रखा। दुश्वारियों और दुर्घटनाओं से सजग-सचेत परिवार में हरदत्त जी का लालन-पालन बड़े प्रेम से हुआ। वह पांच वर्ष के ही थे कि इन्हें इनके चाचा पं० सन्तराम वेदपाठी अपने साथ जम्मू ले आए। वेदपाठी जी अपने

प्रकांड पाण्डित्य के कारण और वेदों के अध्येता के रूप में दूर-दूर तक जाने जाते थे। इनके आराध्य भी शिव ही थे। इनकी कुशल देख-रेख में हरदत्त जी की शिक्षा-दीक्षा होने लगी। वेदपाठी जी के संरक्षण में आकर बालक हरदत्त मानो सरस्वती के आंचल में चले आये थे। पंडित जी के घर संस्कृत-साहित्य, भारतीय अध्यात्म तथा विविध दर्शनों की बातचीत चलती रहती थी। पंडित जी कभी-कभार कुछ कविताएं बनाकर गुनगुनाया करते। हरदत्त जी में परिमार्जित संस्कारों का अंकुरण तथा काव्य-स्फुरण इन्हीं के सान्निध्य की देन था।

हरदत्त जी का हिन्दी प्रेम : पं० हरदत्त जी का हिन्दी-प्रेम आज के हिन्दी प्रेमियों को पुरा-कथा-सा रोमांचक तथा अविश्वसनीय लग सकता है। अविश्वसनीय इस लिये कि जिस समय में वे हिन्दी की स्तुति गाते नहीं अघाते थे तब उनके चौगिर्द उर्दू का बोलबाला था। लोगों में यह खाम-ख्याली घर किये हुये थी कि हिन्दी ज़नानखाने की भाषा तो हो सकती है लेकिन उर्दू भाषा-सी मर्दानगी इससे अपेक्षित नहीं। हरदत्त जी कवि-सम्मेलनों में अथवा कथा वार्ताओं में हिन्दी की स्तुति में दहाड़ा करते। उनकी मान्यता थी कि भाषा एक सांस्कृतिक माध्यम है। इसीलिये वे अपने धार्मिक उपदेश निज भाषा में ढाला करते, जिससे धर्म वार्ता की आड़ में हिन्दी भी लोगों के हृदय में उतर सके। आज 50 वर्ष बाद शायद हम उस समय की परिस्थितियों का सही आकलन न कर पायें जिनमें रहते हुये हरदत्त जी को हिन्दी के पक्ष में काम करना पड़ा था। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उस समय के जम्मू का वातावरण उतना उत्साह-वर्धक न था। ऐसी हतोत्साहित करने वाली परिस्थितियों में अपने श्रोताओं के हृदय में हिन्दी के लिये श्रद्धा पैदा करने में उन्होंने कोई कसर न उठा रखी थी। प्रभाकर की परीक्षाएं शुरू होने पर अनेक विद्यार्थी उनकी प्रेरणा एवं निर्देशन में परीक्षा की तैयारियां किया करते। हरदत्त जी के बाल-सखा पं० पीतांबर 'पारखी' जी के अनुसार—हालांकि जम्मू में और लोग भी हिन्दी के निमित्त कार्यरत थे लेकिन उनमें हरदत्त जी का अंशदान इस दृष्टि से अधिक उपयोगी था कि वे इसके लिये धर्म-मंच का बहुत सुचारू ढंग से इस्तेमाल कर रहे थे। हरदत्त जी के सामने धर्म-मंच केवल भाषाई उन्नयन के लिये आड़ नहीं था, अपितु परंपरागत भारतीय संस्कृति की अवनति को रोकने का माध्यम भी था। धर्म जैसी कोमल मर्म-स्थली तथा भावनाओं को उभारने वाली विचारणा को कवि ने अपने मिशन के लिये एक मंच के रूप में इस्तेमाल किया था।

पाश्चात्य सांस्कृतिक संसर्ग से भारतीय जीवनमूल्यों में आ रहे परिवर्तन को वे गिरावट का चिन्ह मानते थे। उनके समक्ष इस पतन को रोकने का यही तरीका था कि भारतीय लोगों में स्व-धर्म, स्व-भाषा तथा सांस्कृतिक-दाय के प्रति गौरव को जाग्रत किया जाये। इसके लिये ऐतिहासिक महापुरुषों तथा प्राचीन भारतीय कृतियों से प्रेरणा ग्रहण की जाये। सामाजिक सतह पर वे वही कार्य कर रहे थे जो कि उनसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कर चुके थे। हिन्दी ही हमारी संस्कृति का उद्धार कर सकती है, इसे कवि ने अच्छी तरह समझ लिया था। हिन्दी के साथ-साथ वे डोगरी में भी काव्य-रचना किया करते। डोगरी और हिन्दी से उन्हें समान रूप से प्रेम था। डुग्गर वासियों के लिये उन्होंने डोगरी में ही हिन्दी का गुणगान किया था।

हरदत्त जी के हिन्दी-प्रेम को प्रकाशित करने वाला एक और प्रसंग यहां देना अप्रासंगिक न होगा। स्वतंत्रता पूर्व जम्मू में जो साहित्यिक गतिविधियां होती रही हैं उनमें पं० रमाकान्त शास्त्री द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन एक मील-पत्थर की हैसियत रखता है। यह सम्मेलन अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित हुआ था और शास्त्री जी के अथक परिश्रम और उद्यम का फल था। सम्मेलन तीन दिन तक चलता रहा था। जैसा कि साधारणतया होता है, सम्मेलन से पूर्व इसमें भाग लेने वाले कवियों का परिचय करवाया गया। पं० हरदत्त जी भी यहां मौजूद थे। इन्होंने सम्मेलन के संचालक से पहले ही निवेदन कर दिया था कि चूंकि इन्हीं दिनों उनके बाबा जी की चौबरसी है, इसलिये वे सम्मेलन में भाग नहीं ले सकेंगे। अतएव जब आमंत्रित कवियों को हरदत्त जी का परिचय कराते समय कहा गया कि वे किसी कारणवश कवितापाठ नहीं कर पाएंगे तो बाहिर से आए कुछ कवि व्यंग-भाव से मुस्कराए। पण्डित जी को यह मुस्कान चुभ-सी गई। शाम को आठ बजे सम्मेलन शुरू हो रहा था। घर जाकर उन्होंने अपने सुपुत्र श्री बोधराज से कहा कि बाहर के कवियों का स्मित उन्हें बेहद खला है। तब बोधराज से कागज़-पेंसिल लेकर उन्होंने एक कविता की रचना की और बोधराज से सलाह की कि आज सायं खाना बाबा (गंगाराम शर्मा) जी के यहां खाया जाएगा।

पिता-पुत्र दोनों सम्मेलन में रात 8-15 पर पहुंचे यहां हिन्दी के नामी-गिरामी कवि पधारे हुए थे। रमाकान्त जी ने जगह-जगह घूम कर सहृदय हिन्दी प्रेमियों को जम्मू आकर इस सम्मेलन को सफलता के शिखर पर पहुंचाने

की दावत दी थी।

सम्मेलन में कविता-पाठ हो रहा था। बाहर से आमंत्रित कवि एक के बाद एक जमते चले जा रहे थे। मैदान हाथ से जाता देखकर श्रोताओं में से किसी ने आवाज लगाई—"हमारे पं० हरदत्त जी कहां हैं?" प्रत्युत्तर में किसी दूसरे ने व्यंग्य बुझे स्वर में कहा कि वे इन कवियों के सामने थोड़े बोलेंगे, बल्कि बाद में गलियों में अपनी कविता पढ़ेंगे। इसके उपरान्त घायल आत्म-सम्मान के साथ पं० हरदत्त जी तुरन्त मंच पर पधारे-और मंच-संचालक से आज्ञा पाकर सम्मेलन से सम्बोधित हुये। सब से पहले उन्होंने सम्मेलन में उपस्थित न रह पाने की अपनी असमर्थता पर प्रकाश डाला और फिर रमाकान्त जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की जिन के अद्भुत परिश्रम से जम्मू जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्र में उक्त सम्मलेन हो पा रहा था। उनकी पंक्तियां इस तरह थीं :—

श्री रमाकान्त जू के नितांत परिश्रम से आज दैव यह सुदिन दिखायो है।
हिन्दी संसार हू कि मरु-भूमि में भी हिन्दी साहित्य को अंकुर जनायो है।
बिना जल अंकुर बढ़ेगो नाथ कैसे यह, जालंधर जाय यह विनय सुनायो है।
ताके उद्धार हेंतु संग लिये देवी-देव, आज देवराज नेह -मेह बरसायो है।

अन्तिम पंक्ति में देवराज संभवत: कवि देवराज हैं जो कि अपने दल-बल सहित सम्मलेन में भाग लेने आये थे।

इसके पश्चात पण्डित जी ने हिन्दी भाषा की स्तुति में यह कविता पढ़ी थी :—

जय-जय ओंकार मुकुट धारिणी तारिणी शुभगाता,
सुगम मनोहर वर्णरत्नकलिते ललिते हिन्दी माता।
प्रकृति स्वयं शिक्षा देती है, तुही विश्व की आशा है,
जन्म समय पर शिशु कहता है अ, अ, मेरी भाषा है।

आगे चलकर वे इसे ही वेदों की वाहक तथा पुराणों की प्राण मानते हैं। पीछे हम धर्म और भाषा के जिस एकीकरण की बात कह आये है, उसका समर्थन उनकी यह पंक्तियां करती हैं : —

तू ही वेदों का शरीर है, प्राण पुराणों की तू ही,
सब भाषाओं की महारानी, जान ज़बानों की तू ही।
जिसको श्री भगवान कृष्ण श्री मुख से यों अपनाते हैं,
अक्षरमाला में अकार हूं, गीता में बतलाते हैं।

हिन्दी भाषा के साथ ही उन्होंने देवनागरी वर्णमाला को भी उत्कृष्ट मानकर कहा :—

यही देवनागरी - वर्ण चारों वर्णों की पुंजी थी,
धर्म, अर्थ की, काम-मोक्ष की, यही सनानत कुंजी थी।
वेदामृत का पान करा, निर्बल में बल भर देती थी,
परम-पुनीता गीता बनकर अजर अमर कर देती थी ।।

हरदत्त जी की इस कविता ने पुरा मुशायरा लूट लिया था। तालियों की गड़गड़ाहट से पंडाल काफी देर गूंजता रहा था। तमाम वाह-वाहियां लिये पण्डित जी सम्मेलन के सिरताज बन गए थे। जम्मू के कवियों की लाज रह गई थी। इस सम्मेलन की रिपोर्टिंग दैनिक 'मिलाप' में करते हुये इसके सम्पादक ने अपनी टिप्पणी में इस कविता को सम्मेलन की उपलब्धि करार दिया था।

इसी सम्मेलन में उन्होंने हिन्दी की स्तुति में अपनी डोगरी रचना भी पढ़कर सुनाई थी :—

इयै नेह्‌यी मिट्ठी बोल्ली लब्बी नेइयों मिगी कुतै,
जे किश बी मूंहां दा आखो उयै लिखी दिन्दी ऐ।

× × ×

सुहागनी दे मत्थे पर सन्दूरै दा टिक्का जियां,
इयां एह्‌ दे मत्थे पर ओंकारै दी बिन्दी ऐ।

कवि के वर्णनों से आभास मिलता है कि उसने डोगरी को अपनी मां-बोली और हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठत कर रखा था। उनकी इसी सहिष्णुता का प्रतिफलन बाद में डोगरी कवि दीनू भाई पन्त में देखा जा सकता है :—

हिन्दी साढ़ी दादी ऐ ते डोगरी ऐ मां।

इस तरह हम देखते हैं कि एक निःस्वार्थ हिन्दी प्रचारक की भावना उनकी रग-रग में दौड़ रही थी।

हरदत्त जी का प्रकाशित हिन्दी साहित्य :— हरदत्त मूलतः आध्यात्मिक स्वर के कवि थे। इसलिये उनकी रचनाएं या तो भजन हैं या फैशन तथा देश की नैतिकता के अधः पतन के वर्णन। कहीं-कहीं अपवाद रूप में हिन्दू-पौराणिक मिथक-कथाएं भी हैं, जिन्हें कि काव्य में निभाने का प्रयास किया गया है। डोगरी

भजनमाला के नाम से उनके दो संग्रह छपे थे। यह दोनों डोगरी, हिन्दी तथा पंजाबी रचनाओं के मिश्रित संग्रह हैं। इसके प्रत्येक भाग में चार-चार हिन्दी रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त उनके हिन्दी-पंजाबी भजनों के दो और संकलन 'सत्संग-गंगा' नाम से प्रकाशित हुए। 'सत्संग-गंगा' के प्रथम सोपान में २६ हिन्दी तथा ६ पंजाबी, दूसरे सोपान में १५ हिन्दी और ४ पजाबी रचनाएं प्रकाशित की गई हैं।

उन्होंने 'श्री गंगाजल' नाम से एक गद्य पुस्तक भी छपवाई। इसमें दैनंदिन हिन्दू धर्म-कृत्यों के विषय में शास्त्र सम्मत टिप्पणियां की गई हैं। प्रात: सोकर उठने से लेकर रात सोने तक के कामों को एक आदर्श हिन्दू को कैसे करना चाहिये इसे सनातन ग्रंथों से प्रमाण जुटा कर समझाया गया है। जिन विषयों की चर्चा इसमें हुई है वे मुख्यत: इस तरह हैं :—

१. सोकर कब उठना चाहिये
२. गर्म जल और स्नान
३. संध्या (नित्यकर्म)
४. गायत्री जप
५. श्री भगवती का ध्यान
६. सात्विक भोजन
७. व्रत
८. श्री तुलसी पूजा विधि
९. पूजा के मंत्र आदि

बम्बई जाकर हरदत्त जी ने पूर्व-प्रकाशित हिन्दी पंजाबी भजनों व कविताओं का संकलन 'भगवत्पदी' नाम से निकाला। इसमें संग्रहीत रचनाओं की संख्या ६७ है। पंजाबी भजनों का अर्थ हिन्दी में दे दिया गया है। इसके प्रकाशक व भूमिका लेखक बम्बई के एक सज्जन मंगलदास ज० गोरधनदास हैं।

हरदत्त जी ने धर्म-दर्शन विषयक कुछ पुस्तकों की भूमिकाएं भी लिखी थीं। यथा—'सचित्र सतर्प्पण-सन्ध्यादर्प्पण:' जिसके लेखक मैथिलवासी दामोदर शर्म्मा थे। 'दीपक' साप्ताहिक का जिक्र ऊपर आ चुका है। इसमें उनके गद्य लेख भी छपा करते थे। कुछ रचनाएं अन्य पत्रिकाओं में भी छपती रहती थीं। हरदत्त जी की बच्चों के लिये लिखी कुछ कवितायें तत्कालीन हिन्दी के पाठ्यक्रमों में निर्धारित थीं। उनकी एक बालोपयोगी कविता की बानगी देखिए :—

बच्चो तुम हो ताजा फूल,
सिगरेट को मत पीना भूल।
बिना खिले ही मुरझाओगे,
इस बैरी से दुःख पाओगे ।।

हरदत की कविता के वर्ण्य-विषय :— आध्यात्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध होने के कारण हरदत्त के काव्य का मूलाधार भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृति है।

उन्होंने निम्नलिखित विषयों को अपनी कविता में उभारा है :—

१. हिन्दू समाज का पतन
२. सनातन हिन्दू संस्कृति का गौरवमय अतीत
३. आज के पतित समाज का चित्रण
४. समकालीन राजनीतिक उद्‌बोधन तथा गांधीवाद
५. पौराणिक प्रसंग
६. अवतारवाद
७. भक्त और प्रभु पंथ
८. भौतिक भोगवाद और मुक्ति
९. भारतीय नारी। इत्यादि।

इन प्रसंगों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए कृपया देखें अकादमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ—**डोगरी कवि : हरदत्त** (पृष्ठ १२३)

हरदत्त की रचनात्मकता का केन्द्रीय स्वर : प्रत्यक्ष रूप में पं० हरदत्त ह्रासोन्मुखी हिन्दू समाज के लिये दुःखी दिखाई देते हैं। इस लिये वे चाहते हैं कि हिन्दू निज-धर्म का मर्म पहचानें और दया के अनंत भंडार उस प्रभु का नाम लें जिसके कि कई नाम हैं। उनकी हिन्दी रचनाओं में मुख्यत: नाम-महिमा का प्राधान्य दिखाई देता है।

हरदत्त की रचना - धर्मिता पर तुलसी की विनय-पत्रिका की बड़ी गहरी छाप है। नाम-महिमा की प्रसार - भावना को उन्होंने तुलसी के विनय-पदों से ग्रहण किया है। परन्तु तुलसी-सी भक्ति की अनन्यता तथा प्रभु-प्रेम की प्रगाढ़ता हरदत्त में अप्राप्य है। हरदत्त दूसरों को नाम जपने के लिये उपदेश देते हैं जबकि तुलसी एक विनीत भक्त की भांति बहुधा स्वयं को ही प्रभु नाम का महत्व समझाते हैं। तुलसी के विनय-पद सहज प्रवाह में प्रांजलता

लिये सामने आते हैं, जबकि हरदत्त में सहजता के स्थान पर प्रयास-साध्यता और कृत्रिमता के दर्शन होते हैं।

हरदत्त की हिन्दी कविताएं विषय-चयन तथा तुक-तर्ज़ आदि के लिये कहीं द्विवेदी युगीन कवियों की कृतियों का आश्रय लेती हैं तो कहीं मीरा, सूरदास जैसे भक्त कवियों का भी। हरदत्त की निम्नलिखित पंक्तियों में जागरूक पाठक स्वयं यह छाया ढूंढ सकेंगे :—

मोहे प्रीत की रीत सिखादे कोई,
लाख जतन कर हार चुकी हूं।
रूठे पिया से मिला दे कोई।

बहरहाल, हरदत्त पर दूसरे कवियों का प्रभाव एक अलग आलेख का विषय है।

अपनी रचनात्मकता के केन्द्रीय स्वर—'नाम-महिमा' में कवि हरदत्त वेदांत के 'सर्वजीवात्मवादी दर्शन' का आश्रय भी लेने लगते हैं। वे मानते हैं कि प्रभु का वास कण-कण में है :—

अण्डज में, स्वेदज में, उद्भिद जरायु, में, सर्व शक्तिमान है।
पल-पल में, क्षण-क्षण में, तीनों ही कालों में।
कुओं में, तालों में, नदियों में, नालों में, सर्वशक्तिमान है।

विराट, सर्व-व्यापक तथा सर्व-शक्तिमान होते हुये भी वह क्षण-क्षण में समा रहा है। सृष्टि-प्रकृति के प्रत्येक लीला-कण में उसी का प्रकाश फैल रहा है। इसी विराटता के कारण उसके रूपों में वैभिन्य दिखाई देता है। इसलिये भेदता में एकता का दर्शन अभीष्ट है :—

भूल जा भेद की भावना को अरे।

लेकिन यह भेद नाम-रूपात्मक है। वास्तव में प्रभु एक अखंड ज्योति है। भेद दृष्टि को दूर करने के लिये व्यक्ति को ऐन्द्रिक सुखों की कामना न करके विषय-भोगों से पराङ्मुख हो जाना चाहिये—तभी आत्मोद्धार संभव है।

आदमी सांसारिक विषय-भोगों में लिप्त होकर अपना हीरा-जन्म नष्ट कर देता है :—

झूठे सुख पर प्रभु बिसराये, भोग रोम बन सन्मुख आये,
याद लगे आने वे दिन जो, बीत गये यौवन में।
जीवन बीत चला विषयन में ॥

क्षण-भंगुर इन्द्रिय सुखों के लिये व्यक्ति अपने अगले जन्म की सुध भूल जाता है। और बाद में वक्त बिता कर पछताता है। विषयों की गंदगी से निकल कर व्यक्ति को भक्ति मार्ग पर चलना चाहिये। कवि हरदत्त ने आधुनिक यांत्रिक उपादानों का प्रयोग करके अपने मन्तव्य को नया दम-खम प्रदान किया है :—

बैकुण्ठ जाने को मिली, यह देह मोटरकार है,
विषयों की गंदी सैर में क्यों कर रहा बेकार है।
भक्ति का मार्ग सुहाना, उस पर ही इसे चलाना,
यदि चाहे जल्दी जाना, हरि नाम का भर पेटरोल।

कवि का कथन है कि विषयों संग लिप्ती से मुक्ति नहीं मिला करती :—

तू कांच के पीछे रोया, पारस हाथ से खोया,
कीचड़ से कीचड़ धोया, नर जन्म मत रोल।

यही भाव कवि की नीचे उद्धृत पंक्तियों में व्यंजित हो रहा है :—

विषयों में प्रेम बढ़ाने से, ये जहरीले फूल खाने से,
हरि चरण कमल बिसराने से, मिटते हैं मन के शूल नहीं।

× × ×

विषयों की लालसा भोगों से तो मिटती नहीं।

इन से छुटकारे के लिये हरदत्त प्रभु-महिमा का पाथेय धारण करने को कहते हैं। पीछे इसी को उन्होंने प्रभु पथ का 'पेट्रोल' माना है।

प्रभु-पथ की महिमा अपरंपार है। कवि का कृतित्व मुख्यत: इसी के चौगिर्द घूमता है। भिन्न-भिन्न कविताओं से एतद्विषयक एक-एक उदाहरण आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं :—

१. करो मन गोबिन्द का गुणगान,
श्वास - श्वास हरि रटते जाओ।

२. हर श्वास में नाम अमृत भरा हो।

३. राम नाम पहरुआ बिठा कर घर बैठे अमृत फल पाये,
राम नाम रटता चल प्राणी, बिगड़ी ले बनाय, बिगड़ी ले बनाय।

४. हरिनाम की सुन्दर माला जब प्रेम से पिरोयी जाती है,
हर नाम से गंगा बहती है, तन-मन निर्मल कर जाती है।

५. सिर्फ नाम धन के सहारे जिया कर,
किसी का न जग में भरोसा किया कर।

६. हरिनाम परम मंगल है, गुण गाता विश्व सकल है।

७. हरिनामी मधुर रस जो न पिया, यह मानुष जन्म लिया न लिया।

८. अगर प्रेम से नाम गाता रहेगा, तो सब शोक जाता रहेगा।

९. बोले ना हरिनाम तो किस काम तेरा बोलना।

१०. हरिनाम सुमिर सुख पायेगा, मत भूल मनुज पछतायेगा।

११. गाया कर महिमा नाम की, जब तक है काया काम की।

१२. इस जीवन पर मन फूल नहीं,
हरिनाम हृदय से भूल नहीं।

१३. ऐसा हीरा जन्म हरि दान किया,
इस पापी ने खाक मिलाया प्रभु।
कभी कानों से महिमा न तेरी सुनी,
नहीं वाणी से नाम जपाया प्रभु।

१४. क्यों नाम अमृत नहीं पीता रे,
भज ले हरि, जब तक जीता रे।

प्रभु नाम की महिमा को कवि ने बहुत महत्व दिया है। उसने प्रभु को अनेक नामों से स्मरण किया है। जैसे :— श्री कृष्ण, कन्हैया, कन्हाई, गोपाल, मुरारि, सांवरा, मधुकैटभारि, नन्द-नन्दन, नन्द किशोर, यशोदा लाल, मोहन, गोबिन्द, पीतांबरधारी, ब्रजराज, बंसरी वाला, गिरधारी, नाथ, राम, आदि। इससे उनकी श्री कृष्ण पर प्रगाढ़ आस्था का पता चलता है, वे लीला-पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का बार-बार आह्वान करते हैं कि वह अवतार लें और बुराइयों को मिटाएं। कवि का विश्वास है कि प्रभु चरणों में पूर्ण समर्पण और विश्वास से ही यम के फंद कटेंगे :—

वही हमेशा हरे भरे हैं जो तेरे चरणों में आ गिरे हैं।

इस विश्व रूपी कर्म-भूमि पर मनुष्य को यह शरीर अच्छे कार्य करने के लिये वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ है। आदमी को चाहिये कि प्रभु नाम के निर्मल्य से प्रीति करे :—

नाम की निर्मल प्रीत, अनोखी नाम की निर्मल प्रीत।

हमारा मत है कि डोगरा-अंचल के जिन कवियों ने हिन्दी के निमित्त अविस्मरणीय कार्य किया है उनमें हरदत्त जी का नाम अग्रगण्य है, क्योंकि उन्होंने केवल साहित्य-प्रणयन ही नहीं किया अपितु अकेले ही हिन्दी के प्रचार के लिये एक अभियान की शुरूआत भी की थी।



सहायक सामग्री :—

- डोगरी भजन माला—दो भाग
- नीहारिका
- भगवत्पदी
- डोगरी कवि : हरदत्त—कल्चरल अकादमी, जम्मू
- श्री बोधराज शर्मा तथा श्री पीतांबर पारखी से प्राप्त तथ्य

मोहन निराश का रचना संसार

—रतन लाल शांत

अपनी कविता यात्रा पर लिखते हुए मोहन निराश एक स्थान पर कहते हैं कि " वादों की भीड़ में से मैं भी (अन्य मित्रों के साथ साथ) गुज़रता गया। प्रेम-प्रगीत, राष्ट्रवाद, स्वच्छंदतावाद, छाया तथा रहस्यवाद, यथार्थवाद प्रयोग वाद—कहीं न कहीं, किसी न किसी कविता में कोई न कोई बात आ जाती है और फिर ऐसा भी अनुभाव पाया कि सारा तिलिस्म टूटा गया था। सारे भ्रम समाप्त ही हो चुके थे।" * निराश की इस आत्मस्वीकृति से उनके काव्य लेखन की यात्रा को वेहतर समझा जा सकता है, यद्यपि यही उनकी रचना की सीमा नहीं।

कश्मीर के हिंदी लेखक की भी यही विकास यात्रा है और व्यक्तिगत रुझानों या परिस्थितिजन्य दबावों को छोड़कर यहां का हर कवि इन ही चरणों से गुज़रा है। इसका कारण इस भाषा की व्याप्ति की वह प्रक्रिया है, जिस से गुज़रना यहां के लेखक की नियति है। आज से बीस पच्चीस वर्ष पूर्व अर्थात इस शती के पांचवें-छठे दशक में आज के कश्मीरी भाषी हिंदी कवि को इस भाषा साहित्य के पहले संस्कार मिले। कविता उसे उन पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से मिली, जिनके हिंदीभाषी संपादक-संकलन कर्ता अभी छायावादी कविता को भी निरापद-मान्यता देने को तैयार नहीं थे। मज़बूरन प्रसाद, महादेवी, निराला की कविता देकर फिर बच्चन का एकाध गीत देना उनकी उदारता थी। "आजकल 'बच्चन' 'सुमन' 'अंचल' जैसे नवयुवक हिन्दी कविता-पयोधि में वृद्धि कर रहे हैं।" कहकर पाठक-विद्यार्थी के लिए पढ़ने सीखने की खुली छूट की गुंजाइश रखते थे, क्योंकि परीक्षकों से 'नवयुवकों' की कविता से प्रश्न पूछे जाने का खतरा नहीं था। यही कारण है कि सन पचपन तक कश्मीर में छायावादी स्वर का ही

---

* चीड़ों में ठहरी बयार—सं० रमेश मेहता/पृष्ठ 31

प्राधान्य रहा। स्वतंत्र पढ़ने और फिर लिखने में प्रवृत्त होने वाला एक छोटा वर्ग इस स्थिति से उभरा तो खुद को नई कविता की बदली हुई हवाओं से जूझते पाया। नई मानसिकता को एकदम ग्रहण नहीं किया जा सका क्योंकि नई कविता प्रयोगवादी अस्थैर्य से गुज़र कर ही उस समय टिकने लगी थी। यहां का कवि अब वयस्क हो चुका था और अपने मन को अपने परिवेश से एकदम कटा पाकर दिग्भ्रांत होने लगा था। बदले परिवेश को समझने और नई कविता की भाषा में उस परिवेश की अभिव्यक्ति की आशातीत सक्षमता देखने में हमारे कवि का रचयिता मन भटक गया और उसने पाया कि उसका तिलिस्म टूट चुका है, भ्रम समाप्त हो चुके हैं। रचना के स्तर पर उसने पाया कि वह जिस मुहावरे में सोचता था वह अब इस भटकन और भ्रांति का भार सह नहीं पा रहा। जीवन के स्तर पर वह चौंध गया, अपने आपको एकदम समकालीन स्थिति के समक्ष पाकर। यह सर्वग्रासी प्रभाव इतना विराट था कि आगामी तीन दशकों तक उसको जकड़े रहा। यह प्रभाव इतना जैनुइन था कि वह, तब से, समकालीन काव्य धाराओं को परखता-पहचानता हुआ भी उनको अपनी आनुभविक तथा स्थानसंगत सचाइयों की कसौटी पर कसता रहा है और तकरीबन रद्द करता रहा है। मतलब नयी कवितोत्तर धाराओं से है। वह न अकवि हो सका और न ही अचेतन-सचेतन-विचेतन और जाने क्या। नयी कविता की स्थिति हिंदी प्रदेश में उभरती कविता-राजनीति से जितनी बदलती गई उससे उसकी समयसिद्ध और विचार-दृढ़ नींव नहीं बदल सकी। समय और विचार की जड़ें दूर-दूर तक जो फैली थीं।

निराश का पहला कविता संग्रह 1971 में छपा—'कृष्ण मेरा पर्याय' और 1971 में ही उनके सहसंपादन में 'एक अपरिचित आकाश' छपा जिसमें उनकी पांच कविताएं संगृहीत हैं। स्वयं उनके कथनानुसार 'कृष्ण मेरा पर्याय' में उनकी '51 से '69 तक की लिखी कविताओं का संकलन हुआ। यानी 1951 से उनकी कविताओं की यात्रा शुरू हुई। 'आकाश' की कविताएं 1969 से 1971 तक की कविताओं में से ली गई होंगी। उसके बाद से आज तक उनकी कविताएं छिटपुट रूप से छपती रही हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया, 1951 के निराश छायावादी और उत्तर छायावादी भावभूमि की कविता लिखते हैं। उनकी शैली पर, भाषा और शब्द संरचना पर उत्तर छायावादी प्रभाव ज्यादा रहा। 'कृष्ण' की कविताएं

इसी बात की द्योतक हैं। इससे पूर्व की उनकी कविताएं पूर्णतः छायावादी रही होंगी। पहले संग्रह में कवि उनका जिक्र नहीं करते। (इसलिए शायद उन्हें स्वीकृत भी नहीं करते।) खैर, इस संग्रह की कविताओं में स्पष्ट ही एक वर्ग उनकी आरंभिक रचनाओं का भी है। उत्तर छायावादी से प्रगतिवादी अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए। उत्तर छायावादी केवल अवधि की दृष्टि से छायावादी नहीं (क्योंकि छायावाद 1940 तक रहा)—यह बात नहीं, बल्कि ऐसी रचना जो छायावाद की मुख्यधारा के सूखने के बाद भी कहीं कहीं चलती रही, जो वस्तु तथा दृष्टि के लिहाज से छायावादी थी। अवधि की दृष्टि से मुख्य धारा के समकालीन न होने का केवल यह परिणाम निकला कि लहजा थोड़ा सा बदला दृष्टि वही रही, बात वही थी, कही दूसरे ढंग से गयी। निराश की ऐसी कविता मुख्यतः गीतों की है। यद्यपि गीत छायावाद ने भी दिये, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता—गीत का महत्व सब ने स्वीकारा और उर्दू के लिए गज़ल की अनिवार्यता की तरह हिंदी के लिए गीत पर्यायवाची बन गया। पर निराश के गीत लहजे के परिवर्तन और उनकी अपनी सीमाओं— भाषा के एकैडेमिक प्रयोग से ज़रा भिन्न दिखते हैं— महादेवी या प्रसाद या रामकुमार के गीतों से। वे 'वच्चन' के कविसम्मेलनों या गीतों, अंचल और सुमन के तथाकथित 'जनवादी' गीतों के राष्ट्रीय या जन सांस्कृतिक रुख को ज्यादा पेश करते हैं। इनमें एक बाज़ाब्ता प्रयास है जन संस्कृति के स्वातंत्र्यपूर्व संस्करण की छाप पाने का। [संस्कृति बेशक एक अजस्र धारा होती है पर जब यह 'जन संस्कृति' हो जाती है तो इसके सामयिक और प्रासंगिक अर्थ होने लगते हैं। कभी जो 'वर' होता है वह 'विजन' हो जाता है। यह पता लगाए रखना पड़ता है, तभी 'जन संस्कृति का गीतकार' हुआ जा सकता है।] निराश में 'जन' होने की ललक मिलती है पर लगता है कि यह कवि पता लगाए न रख सका और इसीलिए आगे फिर भटक गया और 'रद्द किए जाने की भावना' को अनुभवने लगा :—

वैसे तुम मांगते हो इतिहास
मैं
और कितनी सारी तिथियों के साथ
दे सकता हूं
दो खूबसूरत सी मृत्यु तिथियां
(यह करने में मैं समर्थ भी हूं सक्षम भी)

क्योंकि तुम भी मर चुके हो
और मैं भी मर चुका हूं।

'रद्द' होने से पहले वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए जो मुहावरा गढ़ चुका था जो 'क्लीशे' बना चुका था, वह उसके लिए खुद ही अर्थहीन हो के रह गया :—

शंख सीपी हाथियों से
... ...
अम्बपाली से हेलेन से
कांच के राधा किशन से
संगे असवद के सनम से
जो सजाई जा रही थी
हाट बासी हो गई
बाट वासी हो गई।

यह गीतकार के प्राकृतिक विकास की प्रतिचरमसीमा थी। जहां तक मेरी जातकारी है निराश सीधे किसी 'जन साहित्यिक' आंदोलन से जुड़े नहीं थे, लेकिन इतना अवश्य है कि उत्तर छायावादी या तथाकथित 'जनवादी' गीतकारों की मनोभूमि से वह एकाकार होना चाहते होंगे। उनकी जनवादी आकांक्षाएं सांप्रदायिक न होकर 'राष्ट्रीय जनवादी' हो जाती हैं और मानवतावाद के विशद घेरे के अंदर रची जाती हैं :—

कि आज अंक वांझ का खिला हुआ हरा भरा
नहीं य' सत्य ऊसरा वसुंधरा, है उर्वरा
जाना जो पुत्र, मित्र है
समय का, स्वस्थ चित्र है
सजीव सत्य देख लो, सपन पुकारने लगा!
उठो मनुष्य चेतना का स्वन पुकारने लगा!

जन संस्कृति का पारंपरिक चित्र निराश की इस समय की कविता में बार बार उभरता है। बाद में उन्हें लगा कि अम्बपाली और राधाकृष्ण हाट में बिकने लग गए हैं, वह उस समय उनके लिए आस्था के आधार थे—यह नजरअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि निराश जब गीतों में अपनी एक अलग

पहचान कायम करने के प्रयास में लग जाते हैं तो राधा, कन्हाई मीरा उनके आड़े आते हैं, बार बार, यों कि फिर इन नामों के साथ जुड़े उनके किसी भी भुक्त सत्य में संदेह होने लगता है :—

हर प्रीत न राधा बन जाती
हर दर्द न मोहन बन जाता
हर पीर न मीरा बन सकती
बन सकती क्या राधा-मीरा ?······

और :—कोई मोहन कोई राधा
हंसी जरा भर, मन भर रोना ·····

या फिर :—पनघट पर पानी भरने का
मेला लगता सांझ सकारे
कोई राधा कोई मीरा
ले आती घट प्यारे प्यारे ····· आदि आदि

इन ही राधा और मीरा का क्या हश्र होते देखा बाद में कवि ने जब इनकी सजाई जाती हाट बासी पड़ गई। 'जन' होने की ललक का एक और रूप है—लोक संस्कृति के क्लीशे को इतना दोहराना कि वह घिस जाए :—

(1) यह मांग सजी थी सजनी की
यह द्वारे आया था साजन

रव शहनाई का लहराया थी बाजी पायलिया रुनझुन।
(2) कब मेंहदी थी बनी सुहागन कब कुमकुम था प्यारा लागा
कब चूड़ी सधवा हो आई नथ का भाग भला कब जागा ?

मेहंदी के उड़ जाने, चूड़ी के विधवा हो जाने और मांग के उजड़ जाने का दर्द फिर कवि की नस नस में भर गया और 'लोक गीत' का उन्मुख चेहरा टूटन और तनाव को अभिव्यक्ति देने लगा :—

संध्या मेहंदी रचती जाती पर पी की बारात न आती
कोई नहीं खबरिया लाता और न आती पी की पाती···
चूड़ी बूढ़ी हो जाती है रोली कुमकुम झर जाता है···

···और गीत की पीड़ा का स्वर समकालीन होने लगा। जो प्रिया पहले रिझाती

थी अब बोर करने लगी, और इस बोरियत ने सब से गहरा आघात किया प्यार की आत्मीयता पर। वस्तुतः पनघट पर उतरने वाली राधा और मोहन को पूजने वाली मीरा केवल रिझाने वाली नायिका थी, कंपेंसेशन था, निजी जीवन में कल्पना होके रह जाने वाली प्रिया के आभास का। जब छायावादी भावुकता की सम्पन्नता में प्रिया केवल राधा और मीरा रही, पत्नी या प्रियतमा न हो सकी तो उत्तर छायावादी स्थिति में वह निकट कैसे आती, आत्मीय कैसे होती? वह और दूर पड़ गई तथा केवल नारी हो के रह गई :—

> किंतु मुझे विश्वास—नहीं वह उजड़ेगी ही। नारी तू
> वेश्या न बनेगी। मैं न मरूंगा।······

प्रिया का नारी बन जाना उस प्रक्रिया का द्योतक है जो आत्मीयता की धीमी समाप्ति और भीड़ से एकाकार होने की आकांक्षा के दौरान होती है। भीड़—सांप्रदायिक अर्थ में नहीं कि जहां फिर संकेत ही आज्ञा बन जाता है, बल्कि इस अर्थ में कि घटनाओं की सुलभ तथा आम शब्दावली में व्याख्याओं की खोज की जाती है। युद्ध और शांति की व्याख्या 'सजनि' के पुराने प्यार' और 'साजन' द्वारा 'नारी का जाम' सजाने के मुहावरे में की जाती है। कवि जब किसी को हड्डी चूसते देखता है, किसी को शोणित चाटते तो आकांक्षा प्रकट करता है कि 'तामस योग ढले' तथा 'निश्चेतन' को 'चिर चेतन निगले'।

इस चरण पर कवि के लिए आवश्यक हो गया कि 'भीड़ के साथ साथ चलते हुए भीड़ से अलग रह कर सोचना कि कौन सी दिशा इस मोड़ की है? आखिर कुछ दूर जाकर हमने खुद को इस भीड़ में गैर ज़रूरी पाया।' इसी मोड़ पर कवि को लगा था कि वे रद्द किए जा रहे हैं। प्रश्न है किस के द्वारा?

कवि साधारण निम्नमध्यवित्त परिवार में जन्मा, आज से पैंतालीस वर्ष पूर्व जब इस वर्ग का न ही समकालीन राजनीतिक आकांक्षाओं से सीधा सम्बन्ध था और न ही वह निजी स्तर पर अपने भावी कार्यक्रम की सुरक्षित छाया में सुस्ताने के लिए यात्रा जारी रख सकता था। व्यक्तिगत तौर पर कवि 'प्रोफेसर' बनना चाहता था—उसका कारण छात्रों के परिवेश में मौजूद था। तब तो यह पद ईर्ष्या की वस्तु था, आज न हो तो और बात है। अपनी पहुंच और घर-बाहर के वातावरण में इसका कोई अनुमोदन न पाकर घुटा होगा इस व्यक्ति

का मन * आरंभिक कविता का आत्मलिप्त स्वरूप इस मन में बना निखरा होगा। कवि ने एक साक्षात्कार में बताया कि जाने किस प्रेरणा से कवि बनना चाहता था "लेकिन इतना याद है कि यह चाहा था कि लेखक बनूं, क्योंकि लेखक 'कुछ' बने होते हैं, कुछ ज़रूर कर पाते हैं।" यह पहले से सोचा था, बाद में छात्र जीवन की तत्कालीन प्रवृत्तियों और वातावरण ने उसे थोड़ा पनपाया। लिखना पहले से शुरू किया था। घर में साधारण वित्तीय परिस्थितियों के बावजूद पिता के पाठक-संस्कारों ने कथा, उपन्यास पढ़ने लिखने में मन लगा दिया था। कालेज जीवन में स्वयंसेवी संस्थाओं जैसे हिंदी साहित्य सम्मेलन से जुड़े रहने के कारण भाषा में दिलचस्पी और भाषा-लेखन में कलम आज़माने में रस आने लगा था। इस प्रकार लेखन के प्रति झुकाव तथा लेखक समुदाय में शामिल होने की आकांक्षाएं जन्मती गईं।

ज़िंदगी के इस मोड़ पर, जीवन के एक महत्वपूर्ण भाग, संरचना के एक आधारभूत अवयव, रचना के मूल प्रेरक तत्व, व्यक्तित्व की आत्मीय इकाइयों के बिखराने टूटने तथा निरर्थक होने के आभास ने कवि का स्वर बदल दिया और वह अपनी अर्जित भाषा के द्वारा भी अस्वीकृत होने की अनुभूति से पीड़ित हो उठा—प्रतीक और उपमानों के देवता तो कूच कर ही गए थे। अपने इतिहास के ही जूठे पड़ने का भयावह सत्य उसे झकझोरने लगा—**तुम मुझ से मांगते हो इतिहास। मैं समर्थ हूं केवल देने में एक लंबा जलूस। जो हरबार हर गली से गुज़र कर। उसी चौक में जा पहुंचता है। जहां न जाने किस समय से वह ईश्वर खड़ा है। जो मौसम बदलने के साथ टूटता है।** 'तुम मांगते हो इतिहास' कवि के इस मोड़ की पहचान है। यहीं उसका भाषा के इश्तहार बन जाने का और लिपि के धूमकेतु की इबारत बन जाने के यथार्थ से सामना हुआ। जिस कवि की भाषा राधा के पनघट पर मंडराया करती थी वह 'टूटन पर बासी खबरें मढ़ता' हुआ, इतिहास के मांगने के जवाब में 'केंचुए, कांतर, छिपकलियां ··· चिमगादड़' देता हुआ मिलता है। भ्रम टूटने या दृष्टि बदल जाने से भाषा कैसे परिवर्तन चक्र में फंस सकती है या विकास का द्योतन कर सकती है इस का उदाहरण देखना हो तो निराश की कविताओं का पर्यवेक्षण

---

* पिता चाहते थे कि गणित पढ़ें और अध्यापक भी हो जाएं तो इसी कारण से हिंदी पढ़ने के इनके शौक को उनका समर्थन नहीं मिला।

करना काफी होगा।

भाव और भाषा की इस स्थिति तक पहुंचने के दौरान निराश जिन काव्यानुभवों से गुज़रे उनमें प्रयोगवाद का औत्सुक्य न था और परिणामस्वरूप उसमें न तो भाषा की कच्ची गठन है और न ही नयी कविता की अभिव्यक्ति-निश्चितता का आह्लाद। औत्सुक्य या आह्लाद संस्कारगत विशेषताएं हो जाती हैं जो चरित्र में रची पची होती हैं। निराश ने भाषा को एकैडेमिक स्तर पर ग्रहण किया इसलिए यही उनके संपूर्ण लेखन का घेरा है। औत्सुक्य और आह्लाद उनमें रच पच नहीं गए, इनके लिए दो सीमांत बने। इन दो सीमांतों के बीच ही उन्हें अनुभव प्राप्त होते हैं तथा पनपते हैं। अलबत्ता भाव में केन्द्रीकरण और संगुंफन की कोशिश है :—

पथराई यादों को सरका
इधर उधर को ··· ··· ···
सपन उगा है
दिवसों दिवसों बाद उगा है
चांद उगा है।

अक्षर 'प्रवण प्रिया वेद ऋचा' की भांति बावरा हुआ और कई बार 'टेरते रहने' के बाद आवाज़ बन गया। उनकी 'अक्षर और आवाज़' नामक कविता भाषा की विकास यात्रा की स्वीकृति है :—

कोई पोत न भेजना ··· ···
मैं वह पोत लहरों में लहराने दूं
मंझधार में बहाने दूं
भंवर में भंवर हो जाने के लिए मुक्त छोड़ दूं ! ··

नयी संवेदनाओं की जागृति के दौरान निराश में कुछ पुराने संस्कारों के कारण और कुछ समकालीन स्वर के प्रति खुली मानसिकता के कारण, सूरज 'आकाश' ट्रेजेडी, नियति, बाज़ारू तथा शताब्दियों के तुलनात्मक बोध के मुहावरे में नयी बात कहने की प्रवृत्ति पैदा हुई दिखती है। सूरज इसका पूर्वाग्रह बन जाता है, जो अपने पारिवारिक विरद के प्रतिकूल आचरण करता है।

सूरज की नीयत में रातभर से चोर आके बैठ गया है।
धूप बांटने के बहाने। वह घरों के अंतरंग तक आयेगा .. ।
या हो सकता है वह ले जाये। तुम्हारी दृष्टि... ।

इसी प्रकार कवि को लगता है कि सूरज का बढ़ता हुआ रोल समझने की ज़रूरत है। यह तो अब—"हमें ..हमारी ज़िन्दगी की . इस ट्रेजेडी (एक साया सदा हमारे साथ लगा रहता है) का तो अहसास दिलाता है, किन्तु . यह हमारी आयु लेता है।"

जिस भाषा और भाव की गलियों से निराश का संवेदनशील मन गुज़रा, उसकी स्थिति अलग हो जाती है। वह समकालीन समस्याओं से दो चार होता है, वर्तमान विषमताओं और विसंगतियों को झेलता है। पर, उसकी कविता में महज कटुता या तिक्तता नहीं आती। "अन्य शताब्दियां : एक प्रतिक्रिया" में इस कटुता का 'हाइना' हंसता तो है, अंतर्नक्षत्रीय यात्रा पर जा रहा कोई अंग, टुकड़े-टुकड़े होकर बरसने तो लगता है, लेकिन इसी कविता में जब तेज़धार वाले चाकू का पानी उतारा जाता है, जब 'हाइना' के दोश-बदोश कबीर आ जाते हैं, सरेबाजार रोने के लिये ही चाहे; वियतनाम के शहरे गुमनाम का जिक्र हो जाता है और ईश्वर के ठण्डे लोहू के साथ-साथ नानक आ जाते हैं, 'प्रभजी' कहते हुए ही सही। यह भी मानना होगा कि इससे कवि की स्थिति इर्ष्यामयी भी हो उठती है। 'आत्महत्या' इसी कारण एक सुन्दर कविता हो जाती है। अनुभव की घातक तीव्रता संप्रेषण के लिए घातक नहीं बन जाती। बात तभी संप्रेषण की परिणति पर पहुंचती है, जब :

मैं उन्हें रौंदता गया
उन अंडों की तरह
जो यदि सेये गये होते
तो कितने ही क्रौंच जनमते...

'नियति' अनुभूति के घनत्व के बावजूद इस बिन्दु की तरह पारदर्शी हो जाती है, जिसकी परिधि में रहने की नियति को स्वीकारने की अभिलाषा इस कविता में प्रकट हुई है। 'जीने दो मुझे' अति यथार्थवादी आयामों की कविता होने के बावजूद चट्टानों, सेंधों और वीरानों के लैंडस्केप का चित्रण हो जाती है। इसी प्रकार 'अनुत्तरित प्रश्न' की 'तुम' एक सहज समाधान बनके उभरती है, जो 'मदिर परस' से 'जाम' खोल सकती है। निराश की टेढ़ी लगने वाली कविता भी

कोई समस्या नहीं रह जाती। इनका अनुभव भावातीत हो सकता है भाषातीत नहीं होता। इस प्रक्रिया के दौरान, जो भाषा निर्मित होती है, वह बिम्ब के 'निराश सुलभ' रूप में ढल जाती है—'मर्मिनी धूप', 'पीली नजरें', महापंछी आकाश !', 'एक दिनका सौतेला आदमी', 'रोप देता है प्रतीति', 'रेशमी स्पर्श', 'मज्जा में ढला सर्दी का सीसा'।

निराश की कविताओं को देखते हुए एक बात से दंग हुए बिना नहीं रहा जा सकता। वह है हाइपोथेटीकल स्थितियों पर और (शायद) फर्माइशी अवसरों के लिए इतनी सुन्दर कवितायें लिख पाना। 'कृष्ण : मेरा पर्याय' में तीन ऐसी कवितायें हैं, जो तीन प्रसिद्ध मृत्युओं पर लिखी गई हैं। 'रक्त विज्ञापन' मार्टिन लूथर किंग की हत्या पर, "स्याह सूरज वाला दिन" नेहरू के देहावसान पर '22 नवम्बर, 63', राष्ट्रपति केनेडी की हत्या पर है। इसमें अनुभूति सच्चाई और मुक्त-यथार्थ से प्रेरित लगती है और भाषा अनायास हो उठती है :

हर झुके हुए झण्डे के नीचे
दफ्तर बन्द रहा।
आंखें फाड़ता किवाड़, जो खुला
प्रश्न पूछने के लिए.. ।
इसी प्रकार
वह अनेकों बार अखबारों में छपा हुआ देखा गया,
क्योंकि वह समाचार था। .

इसकी वजह शायद निराश के व्यक्तित्व की लचक और एडजेस्टेबिलिटी है। वह अपने कवि को बहुत जल्द स्थिति से स्थिति तक स्थानांतरित कर सकता है और परिस्थिति को जी सकता है, आकाशवाणी में उसकी नौकरी की मांग है कि वह रोज तीन से चार तक भिन्न कार्यक्रम तैयार करे। हिन्दी का साहित्यिक कार्यक्रम जुटाये, लेखक का साक्षात्कार करे, कृषि या भौतिकी अथवा किसी राजनीतिक महापुरुष या किसी दूर देश के भौगोलिक परिचय या आदि-मानव कीमनोवैज्ञानिक अभिवृत्ति या एक्स आल्ट्रा वाइलेट-लेज़र किरणें या समुद्र-तल के भूगर्भीय परिवर्तनों पर ऐसा कार्यक्रम कराए कि घर में, हाट-बाज़ार में, खेत-खलिहान में, कारखाने में पड़ा-खड़ा, काम करता अशिक्षित मज़दूर, किसान, गृहस्थ, गृहस्थिन सुन-समझ ले। अपने व्यक्तित्व को एकदम बांट पाने, ध्यान को विकेंद्रित कर पाने और फिर मौलिक प्रयास की प्रभविष्णुता बरकरार रखने की

कोशिश में इस कवि का व्यक्तित्व रोज़ एडजस्ट होने की मांग करता है और उसे स्थिति से स्थिति तक बदलते रहने का अवचेतन प्रशिक्षण देता रहता है। इससे वह किसी अप्रत्याशित स्थिति में भी मौलिक दिख सकता है और किसी फरमाइशी अवसर पर भी रचनाशील।

विरोधों में पला यह कवि समरस भूमि की खोज में है। वह परम्परा को झटक नहीं सकता और इससे अपने भाव और भाषा को संशोधित करने में प्रयासरत है। उसने अपनी रचनायात्रा के दौरान अपने लिये जो बन्धन तैयार किये उनकी जकड़ को, उन शृङ्खलाओं को वह कहां तक शृङ्गार के लिये प्रयुक्त करता रह सकेगा, यह देखना है।

—०—

श्रीवत्स विकल : व्यक्ति और कवि

डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

सन् 1947 के अनन्तर इस क्षेत्र में हिन्दी कविता ने कौन-कौन-से उतार-चढ़ाव देखे हैं इनमें न जाकर मैं केवल इस युग के एक युवा कवि की साहित्यिक गतिविधियां ही प्रदर्शित करना चाहता हूं। आज जम्मू क्षेत्र की वह पुरानी लेखन-परम्परा विविध रूपों में अधिकाधिक विस्तृत एवं विशाल हो चली है, जिसमें इस समय अनेक युवा, प्रौढ़ और वृद्ध कवि तथा कवयित्रियां अमर साहित्य सृजन कर रही हैं तथा अनेक साहित्यिक सभायें चल रही हैं। किंतु इस परिप्रेक्ष्य में ही हमारे लेख के नायक स्वर्गीय श्रीवत्स विकल का नाम प्रतिष्ठित स्थान रखता है।

स्वर्गीय विकल जी जम्मू क्षेत्र में अधिकतर डोगरी लेखक के रूप में जाने जाते हैं। इसका कारण उनका प्रसिद्ध डोगरी उपन्यास "फुल्ल बिना डाली" है। जिसे उन्होंने अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व प्रकाशित किया था, बल्कि यह कहना होगा कि प्रस्तुत उपन्यास के अंतिम प्रूफ देख लेने के दूसरे दिन, स्वल्पावस्था में ही असामयिक देहांत हो गया। इस प्रकाशन के पहले वे वर्षों की साधना द्वारा कविता और कहानी के क्षेत्र में पंजाब तथा उत्तर भारत तक अपना नाम कर चुके थे। उनकी हिन्दी-लेखन- साधना जब अधिक मंजने लगी, तब किसी के सुझाव पर डोगरी-लेखन की ओर झुके और डोगरी की उपर्युक्त प्रथम रचना द्वारा ही सारे जम्मू क्षेत्र तथा उत्तरी भारत तक डोगरी लेखक के रूप में अपना नाम प्रसिद्ध कर गये। साहित्य अकादमी दिल्ली ने प्रस्तुत उपन्यास पर पांच हज़ार रुपयों का पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया, किन्तु यह सम्मान उन्हें मृत्यु के उपरांत ही मिला।

विकल जी की हिन्दी कविताओं का पूरा अध्ययन कर लेने के पश्चात मेरे मानसपटल पर जो भावनायें और चिन्तन प्रस्फुटित हुए उनके अन्तर्गत मैंने इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निकाले हैं। वे परंपरागत खड़ी बोली की कविता और आगत प्रयोगवादी शैली तथा 'अकविता' के युग के सन्धिकाल सेसम्बन्धित

लगते हैं। उनकी कविताओं में कल्पना और भावुकता के साथ आदर्श और यथार्थ दोनों ही प्रकट हुए हैं, किन्तु राष्ट्रीय भावना तथा शृङ्गार भी यत्र- तत्र पर्याप्त मात्रा में देखे गये है। उन्होंने यथासम्भव स्वच्छन्द (छन्दहीन) और अतुकांत शैली से अपना बचाव ही किया है। इसलिए उनके गीतों में संगीतात्मकता तथा शब्दों का नापतोल अधिक उभरा है। इस कारण वे परम्परागत कविता से अधिक सम्बद्ध लगते हैं। आत्मनिष्ठता, जीवन-संगीत, कुण्ठा, संघर्ष, असफलता, निराशा ये भाव भी उनकी रचनाओं में अधिक देखे गये हैं, जिनमें कवि का आंतरिक जीवन और हृदय के द्वन्द्व स्वयं उभर कर उनके जीवन की वास्तविक झलक दे जाते हैं। कवि ने जीवनभर अपने को स्थिर करने के लिये, जिन भिन्न भिन्न विषम परिस्थितियों का सामना किया उनका साकार चित्र इन कविताओं में उद्‌भूत हुआ है। इन विषमताओं और अन्तर्जलन ने कवि को अधिक गम्भीर और चिन्तनशील बना दिया। निरन्तर संघर्ष से जूझकर कवि को एक अद्‌भुत आत्मविश्वास, आत्मबल और साहस मिला, जो उसके इस पद्य में प्रस्फुटित हुआ है :

देख साहस चरण का सहम ही गया,
पास तूफान मेरे न आया कभी,
जब कभी मंज़िलों के लिये मैं चला,
आंधियों ने कहा, दूर से लौट चल।
पर, सभी यह निरर्थक लगी बात तब
ठोकरों ने कहा, जब मुझे और चल !

साहस और मानसिक शक्ति का बल लेकर ही विकल जीवनसंघर्ष में जूझता रहा। उसकी जीवनी से यह तथ्य भी स्पष्ट है। रामनगर गांव में 1039 में जन्म, आर्थिक दृष्टि से साधारण परिवार में लालन-पालन, पांच वर्षों की अवस्था में देहाती स्कूल में प्रवेश तथा पांचवीं पास करने के अनन्तर जम्मू के रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश। इन प्रारम्भिक परिस्थितियों में ही कवि के कुण्ठाग्रसित जीवन का अग्रिम अध्याय शुरु होता है। जब विकल उक्त संस्कृत महाविद्यालय में प्रविष्ट हुआ (1950 ई. में), तो इन पंक्तिओं का लेखक वहीं पर अध्यापक था। प्रथम दिन ही मेरे पास कक्षा में पढ़ने आया। मैंने नाम पूछा तो कहा, **ओम् प्रकाश,** बाद में श्रीवत्स विकल साहित्यिक नाम रखा। प्राज्ञ कक्षा तक श्रीवत्स मेरे पास पढ़ा। उन्हीं दिनों मैं एम. ए.

करने के लिये हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में (दो वर्षों के लिये) चला गया और सन् 1955 में एम. ए. पास करके पुन: इसी महाविद्यालय में अपने पद पर उपस्थित हुआ, तो पता चला कि ओम् प्रकाश सन् 1954 में प्राज्ञ पास करके अमृतसर की किसी पाठशाला में विशारद कक्षा में पढ़ रहा है। ये दिन उसके पूर्ण संघर्ष के दिन थे। बिना आर्थिक सहायता के बाहर जाकर भोजन, निवास तथा पुस्तकों आदि का प्रबन्ध भी स्वयं करना और पढ़ना तथा सुख- दु:ख में घर से दूर रहना इत्यादि एक 16–17 वर्ष के किशोर के लिए कितनी समस्यायें पैदा हो गई थीं। ऐसे बालकों को इस जीवन के चक्रों में से गुज़र कर स्वयं अपने को जब बनाना पड़ जाता है, तो उस अवस्था में वे जिन कठिनाइयों को भोगते हैं, उसका अनुमान कोई भुक्तभोगी ही कर सकते हैं। विशारद पास करने के पश्चात विकल बहुत दिनों तक जीविका के लिए पंजाब में इधर- उधर भटकता रहा और अन्त में विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धान संस्थान में किसी साधारण-से पद पर आसीन हो गया। इस बीच एकबार अचानक मुझे जम्मू में मिला। उस समय उसका विचित्र रूप मैंने देखा। "गुरुजी प्रणाम !" कह कर वह एकदम मेरे सामने झुककर खड़ा हो गया। मैं पहचान नहीं पाया। क्योंकि मुंह पर दाढ़ी, सिर पर साधुओं जैसी बालों की लटायें, कुर्ता तथा लुंगी पहने हुए था। बिल्कुल ब्रह्मचारी की शक्ल में। मैं देखता ही रह गया। "क्या आपने नहीं पहचाना ?" उसने फिर कहा। 'नहीं' मेरे मुंह से ऐसा सुन कर वह एकदम से बोल पड़ा—"मैं हूं वही ओम् प्रकाश, जो पाठशाला में आपके पास पढ़ता था।" सुन कर मुझे सब कुछ स्मरण हो आया। "अरे ओम् ! तुमने तो रूप ही बदल लिया !"—मैंने कहा। कुछ क्षणों की यही हमारी भेंट थी। विकल ने मुझे अपनी पूरी जीवन कथा भी कही। मैंने उसे सुझाव दिया कि वह शास्त्री भी पास कर ले। खैर, बात यहीं तक समाप्त हो गयी। फिर कुछ वर्षों तक विकल नहीं मिला। इसी बीच उसने 1960 में शास्त्री भी पास कर ली। किन कठिनाइयों में रह कर की होगी, यह तो सहज ही समझा जा सकता है। शास्त्री परीक्षा पास करने के बाद विकल गुरदासपुर में ही कहीं प्राइवेट स्कूल में अध्यापक बना। फिर फौज में धार्मिक पण्डित के पद पर आसीन होकर कहीं दूर भेजा गया। इसी दौरान उसने विवाह भी कर लिया था।

सन् 1964 में विकल मुझ से दूसरी बार जम्मू में ,मिला, तो उसमें काफी

अन्तर आ चुका था। शरीर यौवन के उभार की बुलन्दी तक पहुंचा हुआ था। अच्छी नौकरी से, अच्छी खुराक मिलने से स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया था। उसने झुककर प्रणाम किया और मेरे मुख से भी आशीष के शब्द निकले। इस समय तक विकल साहित्यिक क्षेत्र में भी अच्छा नाम कमा चुका था। सन् 1966 के शीराज़ा में उसकी एक डोगरी कहानी भी मैंने पढ़ी थी। अब कहानी का नाम याद नहीं आता। विकल ने अपनी साहित्यिक गतिविधियों का पूरा ब्यौरा देने की बजाय अपना एलबम ही मेरे हाथ में पकड़ाते हुए कहा—"गुरुजी ! यह सब आपकी ही प्रेरणा है। जब आपकी कक्षा में आता, तो आपको फालतू समय में कुछ-न-कुछ लिखते ही देखा करता था। आपकी छपी रचनायें पढ़ कर मुझे भी कुछ लिखने की प्रेरणा मिली।" मैंने एलबम के पन्ने उलटने शुरु किये। उसमें विकल की सभी कविताएं तथा पुरस्कृत कहानियों के कटिंग्स और प्रकाशित कविताओं की स्लिपें भी साथ जोड़ी हुई थीं। वास्तव में विकल की समग्र हिन्दी साहित्य-साधना का, वह पुस्तक एक सम्पूर्ण लेखा- जोखा प्रस्तुत कर रही थी। जिन पत्रिकाओं में उसकी कविताएं तथा कहानियां छपती रहीं वे इस प्रकार एलबम में देखी गईं।

1. विश्व-ज्योति (होशियारपुर) 2. दिव्य-ज्योति (शिमला)
3, पंचायती राज (चण्डीगढ़) 4. जगत् मासिक (दिल्ली)
5. एकता सन्देश (दिल्ली) 6. अमर भारत (दिल्ली)
7. प्रेरणा (जोधपुर) 8. योजना (जम्मू)
9. शीराज़ा (जम्मू) 10. हमारा साहित्य (जम्मू)

उनकी पुस्तकाकार रचनाओं की सूची इस प्रकार है :

1. वेदना के स्वर (कविता संग्रह), 2. बहती नाव उखड़ते किनारे (कविता संग्रह)

इस फौजी नौकरी के अन्तर्गत उन्हें भारत के अति दूर स्थानों पर जाना पड़ा, जैसे : सिकन्दराबाद, तेजपुर (असम), आदि। वे किशोरावस्था में ही घर से निकले, पंजाब में पढ़े और नौकरी भी इतनी दूर-दूर की लगी, फिर बिल्कुल अकेले प्रवास की कठिनाइयों को झेलना। इसी से उनको दिल की बीमारी लगी, जिसने 15 फरवरी, 1970 में केवल 31 वर्षों की स्वल्पायु में ही उनकी जीवनलीला समाप्त कर दी। यह दिन जम्मू-कश्मीर राज्य के एक उभरते हुए हिन्दी लेखक का अन्तकारी दुर्दिन था।

विकल की सब कविताओं के आकलन द्वारा उनकी कुछ मनोभूमियों के दर्शन होते हैं। सर्वप्रथम वे साहसभरी कवितायें गढ़ने में प्रवीण हैं। इन पद्यों में उनकी स्फूर्ति और जीवन संघर्ष में धीरज का परिचय मिलता है। उनके मत में मनुष्य के लिये कर्मपथ पर प्रवृत्त होना सबसे उत्तम स्वभाव है, जैसे :

जो बैठ गया थक कर उसने कब क्या पाया,

+ × +

अम्बर का विस्तार क्षितिज की बाहों में सीमित,
महासिन्धु का ज्वार किनारों पर ही अवलम्बित,
सीमाओं को तोड़ सरिता तो सागर बन जाती,
कि नई सीमा में निज को भी बँधा पाती।

इस प्रकार के पद्यों में विकल जीवन की गहराइयों में पैठ कर अनुभूत अर्थों का गायक बन गया है।

साहस की इस उत्तेजना शक्ति से ओतप्रोत विकल का हृदय जिस प्रकार उग्र और दृढ़ बन गया था, उसी प्रकार भावुकता के क्षेत्र में भी उसकी उठान फूल जैसी कोमल भी थी। सम्वेदना की तीव्रता ने उसके पदों में सुनहरा रंग भर दिया। यह कोमलता और ललित भावना कवि के प्रेमगीतों में अधिक प्रस्फुटित हुई है, जैसे :

मुस्कान तुम्हारी समा सके जिसके भीतर,
मन का ऐसा आकार कहां से लाऊँगा।
कर सका न दर्पण रूप तुम्हारा प्रतिबिम्बित,

प्रेम की विह्वलता में कभी कभी विकल के शृङ्गारिक गीतों में कुछ नग्नता भी उभरी है, जैसे :

कम्पित होती मौन उरोजों की घाटी
जिन को छूने को उड़ती धरती की माटी।

कवि के विरह में एकान्त क्षणों की देन—उग्र टीस के भी दर्शन होते हैं। उसका अवचेतन मन प्रियमिलन के सपनों को खोकर गीत सुनना चाहता है। अपने व्यथित मन को सहलाने के लिए, जैसे :

मिलन से नित नव बना दो
हो जाय न कभी विस्मृति
प्रिय, वेदना के स्वर में रागिणी
फिर गुनगुना दो।

कवि की स्वरलहरी राष्ट्रीयता के तारों से भी झंकृत हुई है। ऐसी अनेक कवितायें हैं, जिन में विकल की अन्तरात्मा देशप्रेम के साथ घुलमिल गई है। वास्तव में जिस कवि ने देश और समाज की दुर्दशा-जनित निराशाएं और ठोकरें खाई हों, उसी के कण्ठ से ऐसा स्वर फूटता है। सुखों की सुमनशय्या पर कलोल करने वाले कवि लोग प्रयत्न करके भी अपने पदों में वह गम्भीर राष्ट्रीय स्वर मुखरित नहीं कर पाते। केवल सूखा आक्रोश और विद्रोह मुखरित करने में ही राष्ट्रीयता नहीं होती। चूंकि विकल ने जीवन का ऊबड़-खाबड़ मार्ग तय किया था, इसी से उनके हृदय में, जो संचित विचार थे, वे स्वतः राष्ट्रीयता में फूट निकले। उनकी राष्ट्रीय कविता का एक पद्य इस प्रकार है :

देख, ऊंचा भाल ताने वह हिमालय है रहा,
सींच रक्त से धरा जो शेष तुम में है रहा,
है प्रभंजन चल रहा, अम्बर गिराता गाज है,
आज मेरी राह में बजता प्रलय का साज है।
इस दशा में सैनिक तू निज लक्ष्य का सन्धान कर,
भारत मां की लाज वत्स, आज तेरे हाथ है,
तेरे पहले हम मरेंगे, तू हमारा श्वास है।

कवि जीवन के कड़वे घूंट पीकर भी एकांत क्षणों में प्रकृति- सौंदर्य की अनुभूति में अधिक द्रवणशील दिखाई पड़ता है। कवि के प्रकृति- सौन्दर्य सम्बन्धी अनेक गीत हैं, जिनमें से एक उदाहरण के रूप में यहां प्रस्तुत किया जाता है :

उषा ने सुबह नया द्वार खोला,
निशा ने संवारे अलक दामिनी के,
क्षितिज- तीर पर क्षीण सिन्दूर सौरभ,
विहसने लगा गीत गाने लगा,
सजग हो गया जग हंस प्राण पुलकित,
प्रभाती पवन गुनगुनाने लगा।

जब कवि जीवन की कुण्ठाओं का अनुभव करके गम्भीर और चिन्तनशील

बन जाता है, उस समय उसके कण्ठ से फूटे हुए राग कोमल, अनुभूत और संयुक्तता के साथ, चिन्तनप्रधान भी बन जाते हैं। विकल की अनेक कविताएं इसी धारा की मिलती हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है :

महासिन्धु का ज्वार किनारों पर ही अवलम्बित है,
मानव सांसारिक सुखों के आकर्षण में बन्दी,
बन्धन में मानव की आत्मा भी अकुलाती ।

विकल की जिन कविताओं को ऊपर उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया गया है वे सब विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं।

इसके अतिरिक्त उनकी कुछ हिन्दी कहानियां भी पत्रिकाओं में छपी हैं और एक-दो कहानी-संग्रह अभी अप्रकाशित अवस्था में पड़े हैं। शायद इतने ही कविता संग्रह भी अभी अप्रकाशित हों। फिर भी उनका प्रकाशित हिन्दी साहित्य उनकी स्वल्पायु तथा साधना के प्रारम्भिक चरण के अनुपात से पर्याप्त ही माना जा सकता है। अर्थाभाव के कारण वे अपनी ये रचनायें प्रकाशित नहीं कर पाये होंगे। यदि जीवित रहते, तो ऐसा भी समय देखते, जब ये रचनायें किसी प्रकाशक या संस्था द्वारा प्रकाशित होतीं।

जिस प्रकार उनका डोगरी उपन्यास "फुल्ल बिना डाली" साहित्य अकादेमी (भारत सरकार) तथा कल्चरल अकादमी (ज. क. राज्य-सरकार) द्वारा पुरस्कार पा गया, उसी प्रकार उनकी कोई अग्रिम हिन्दी रचना भी ऐसा ही सम्मान पाती यदि वे दीर्घजीवी होकर हिन्दी- साहित्य की साधना करने का अवसर प्राप्त करते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी लेखनी में कला तथा संस्कारगत प्रतिभा अवश्य थी, जिसके बल पर वे अभी यौवन की पहली सीढ़ी तक पहुंचते ही इतना नाम कमा गये। उनके चले जाने से हिन्दी-साहित्य- गगन का एक उदीयमान नक्षत्र ढल गया है।

—०—

आज की कविता की दिशा

—डॉ० नरेन्द्रमोहन

समकालीन दौर में रचित कविताओं में कई स्वर और प्रवृत्तियां, कई धरातल और आयाम एक साथ देखे जा सकते हैं। कई बार इनमें परस्पर विरोध भी नज़र आता है। पर, यदि गौर से देखें तो इनमें अपने- अपने समय की प्रामाणिक हलचलें मिलेंगी, एक ऐसा सम्बन्धसूत्र भी, जो इन्हें एक- दूसरे से विच्छिन्न नहीं होने देता। इन कविताओं में यथार्थ के ग्रहण और चित्रण की पुरानी पद्धति नहीं है। यहां दृष्टि बदली हुई है। यह बदली हुई दृष्टि है समकालीन यथार्थ के जटिल, पेचीदा और अन्तर्विरोधों-भरे माहौल को आलोचनात्मक ढंग से देखने-पड़तालने की, समकालीन स्थिति को यथास्थिति के तौर पर नहीं, उसे पूरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने और ऐतिहासिक शक्तियों से सम्बद्ध करने की। ऐसा न तो रसवादी दृष्टि से सम्भव है, न ही मतवादी दृष्टि से। इसके लिये ज़रूरी है कि वैचारिक सक्रियता का तत्त्व, जो एक ओर कवि को स्थितियों से द्वंद्वात्मक रूप में सम्बद्ध होने और जूझने की शक्ति प्रदान कर सकता है। वहीं दूसरी ओर उसे मतवादी दकियानूसीपन से बचा भी सकता है।

प्रश्न हो सकता है कि यथार्थ के प्रति इस ढंग का आलोचनात्मक रवैया और व्यवहार कविता में किस प्रकार प्रतिफलित हो? कविता में इस ढंग की सर्जनात्मक आलोचना-दृष्टि कैसे अर्जित की जाये? इसके लिये हमें लगता है, यथार्थ के आलोचनात्मक बोध के साथ साथ कविता के पारंपरित ढाँचे में तथा उसकी मान्यताओं और इकाइयों में भी रद्दोबदल के संकेत मिलने चाहिएं। कविता दृश्य- चित्रण तक सिमटी हुई नहीं रहनी चाहिये, उसके द्वारा दृश्य का अतिक्रमण और दृष्टि का विस्तार भी होना चाहिये।

पिछले दशक में अकविता और उग्र वामपन्थी कविता की जो रूढ़ियां और रीतियां निर्मित हुईं, उनसे हम अच्छी तरह परिचित हैं। आठवें दशक में

इन्हें तोड़ने का प्रयत्न किया कुछ ऐसे युवा कवियों ने, जो कविता में विचार की केन्द्रीय स्थिति मानते थे। इन कवियों ने अकविता की परिदृश्यहीन, घोर व्यक्तिवादी, भाववादी, अतियथार्थवादी और शिल्पगत चमत्कार को प्रश्रय देनेवाली रीतियों का विरोध किया, तो दूसरी ओर उग्रवामपन्थी कविता की भविष्यवाणीगर्भित सामाजिक बदलाव की भावना को सन्तुलित करने का प्रयत्न किया—राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों की पड़ताल कर तथा उसकी प्रासंगिकता को उभार कर। इससे अनुभव की स्वायत्तता की 'मिथ' खण्डित हुई। अनुभव एक ठोस वस्तुगत सन्दर्भ पाकर विचार के गहरे रचनात्मक स्तरों पर सम्बद्ध होने लगा। परिस्थिति से भावनात्मक लाभ उठाने की अपेक्षा उसे विचार की समकक्षता में नियोजित कर दिया गया। जिससे काव्यानुभव समृद्ध हुआ और उसकी परिधि बढ़ी।

आज की कविता में वस्तु और परिस्थिति के सन्दर्भ में ही काव्यात्मक विचार का संधान करने वाली दृष्टि सक्रिय है। यह दृष्टि भावप्रेरित न होकर विचार-प्रेरित है :

अब किसी को नहीं लगती
कविता से चोट
या बद्दुआ
हवा में पैबन्द हो गयी है चीख। **(बलदेव वंशी)**

यह कविता की ठेठ, रोमानहीन परिकल्पना है। वास्तविकता को समझने-पहचानने और उसमें रचनात्मक तौर पर अन्तर्प्रवेश पाने का यही एकमात्र साधन है कि स्थिति और मनोदशाओं को भावुक हो करके नहीं, वैचारिक आधार पर जांचा जाए। कवि के आदर्श का वक्तव्य भी द्रष्टव्य है :

मेरा विवेक
भावुकता की विषकन्या के स्पर्श से
मुक्त रहना चाहता है।

इसी आधार पर विश्वनाथप्रसाद तिवारी भी स्थितियों और मनोदशाओं को जांचने का प्रयत्न करते हैं। **क्या होना चाहिये** के बजाय **क्या है** ?—कवि को स्थिति की सही पड़ताल में मदद देता है। कवि जानता है, कि शोषितों की पीड़ा का अन्त तभी होगा, जब वे एकजुट होंगे। पर, उसे वास्तविकता का परिज्ञान भी है कि वे दर्द से मुक्त होने के लिए छटपटाते तो हैं "मगर एक को दूसरे

की चीख नहीं सुनाई पड़ती।" वस्तु स्थिति की यह समझ ही, उसकी संकल्प चेतना को कहीं उथला या अतिरंजित नहीं बनने देती।

राजीव सक्सेना ने अपनी एक कविता ध्रुव प्रदेश में लिखा है :

> **क्या आज हर बात की तह में नहीं जाना होगा ?**
> **नए सिरे से ... ...**

यह कविता के बारे में ही नहीं, पूरे जीवन- विधान के बारे में एक बौद्धिक, वयस्क दृष्टिकोण है। इधर क्या कविता के सौन्दर्यशास्त्र के पीछे इस दृष्टिकोण की सक्रियता देखी जा सकती है जो परिस्थिति से अलगाव का ही नहीं, उसमें सहभाग का सौन्दर्य- शास्त्र है। इसमें लिखने का अर्थ है यह बताना कि :

> यह क्या है ?
> क्यों है ?
> और क्या होना चाहिए ? (ऋतुराज)

शशिशेखर तोषखानी की कविताओं में मृत्यु जैसे भयावह सन्दर्भों को चीरते हुए चलते रहने की छटपटाहट है। वे उस पुल की तलाश में हैं, जो उन्हें जीवित सन्दर्भों के भूगोल से जोड़ दे :

> **अपनी मृत्यु को**
> **रोजनामचे के एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ तक ढोता हुआ मैं**
> **चलता जाता हूँ**
> **उस पुल की तलाश में**
> **जो मुझे जीवित सन्दर्भों के भूगोल से जोड़ दे।**

तोषखानी महसूस करते हैं कि आत्मविहीन और अकेले अन्धेरे के विरुद्ध अन्तहीन लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। **रमेश मेहता** की कविताएं आद्योपांत परिवर्तन के पक्ष की कविताएं हैं :

> **नयी तस्वीर के लिये**
> **कलम**
> **रंग**
> **कैनवस**
> **सभी कुछ बदलना होगा**
> **एक आद्योपांत परिवर्तन।**

परिवर्तन की यह इच्छा इसलिए है कि :

निर्णय का क्षण

हम से
हर बार छीन लिया जाता है।
हिंस्र पशुओं के अखाड़े में
(सम्राटों के मनोरंजनार्थ) फिंकवाने को
हमें ही हर बार बीन लिया जाता है।

कवि विद्रोह के रास्ते को अपनाता है :

मगर अब गूंगी अभिलाषा को
कसमसा कर, उफन कर
छिटकना ही है
कांटेदार तारों के
बन्द घेरे के उस पार—
बूढ़ी व्यवस्था के मांसाहारी जबड़ों पर
लगाना ही है थप्पड़
कि
कन्धे—
हवा में फैल सकें।

मोहन निराश की कविताओं में यही बात गहन आत्मसंघर्ष के रूप में व्यक्त हुई है :

नाम अपना रखा है मैंने :
'हम' अर्थात्
घरों से बाहर आये लोग
अर्थात् मैं
अर्थात्
काले कागज पर लिखा गया खून का सूरज।

आज की कविता का मुख्य स्वर व्यंग्य और विसंगति- विडंबना का है। **ज्ञानेन्द्रपति, चन्द्रकांत देवताले** की कविताओं में इस प्रवृत्ति को विशेष रूप से देखा जा सकता है। **रतनलाल शांत, ओम प्रकाश गुप्त, सुभाष भारद्वाज** तथा

निर्मल विनोद की कविताओं में भी विसंगति- विडंबना को उघाड़ने, स्थितियों की चीरफाड़ करने वाली व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है। रतनलाल शांत की कुछ पंक्तियां हैं :

मेरा
विकल्प का देवता
पिछले तीन दशकों में
स्वल्प मृत्यु का शिकार हुआ है।

इसे ही व्यंग्यात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है ओम प्रकाश गुप्त ने :

ओ मेरे देश के कर्णधारो !
अपनी सभी कमजोरियां
मेरे कन्धों पर लाद दो।
मेरे मुँह पर जड़ दो ताले
मेरी पीठ पर दाग दो—अपने भारी ज़ूतों के निशान,
मेरे पेट से छीन लो—भूख की आदत,
आंखों से छीन लो—शीशों के अन्दर झांकने की लत।

आज की कविता में वैचारिक तत्त्वों की सक्रिय उपस्थिति से काव्यानुभव में जो बदलाव घटित हुआ है, अनुभव और विचार में जो विशिष्ट समीकरण बना है, विसंगति और विडम्बना में से जो व्यंग्यात्मक और निर्णयात्मक अभिव्यक्ति छन कर आयी है, वही आज की कविता की वास्तविक स्थिति और दिशा है।

—o—

जम्मू की साठोत्तरी हिन्दी कविता

संदर्भ कुल हिन्दी कविता का

—अशोक जेरथ

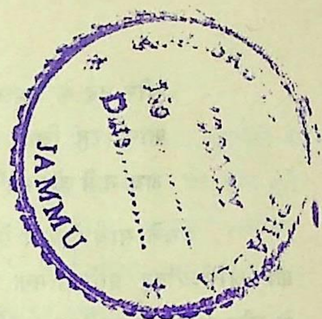
साठ के बाद कुल हिन्दी कविता कितने ही खेमों में बटी हो, उसे नई कविता से अलग कितने ही नाम क्यों न दिए गए हों किन्तु नई कविता की पृष्ठभूमि से वह अलग नहीं हो सकी। अकविता, अतिकविता, अस्वीकृत-कविता, वाम-कविता, जनवादी-कविता, साम्प्रतिक-कविता आदि अनेक मंच स्थापित हुए और समय के साथ ही टूट कर ऐसे बिखरे कि उनके निशां तक भी बाकी न रहे। इन सब खेमों में से अकविता का खेमा काफी फैला, लचका पर अन्त में वह भी चरमरा गया ; क्योंकि मौलिक आधार पर अकविता को नई कविता से अलग नहीं किया जा सका। "अकविता वालों ने भले ही कविता से अलगाने के लिए अकविता का नाम दे दिया किन्तु मौलिक आधार पर अकविता को कविता से अलग नहीं कर सके।" [1]

"साठ के बाद की कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत साफ उभरा है।"[2] प्रश्न यह है कि नई कविता में यह असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर कब नहीं था ? लेकिन आज जीवन की तलखियों की पहचान बड़ी शिद्दत से महसूस की जाकर अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य साठोत्तरी कवियों में है। वह किसी भी खेमें से क्यों न जुड़ा हो उसके स्वर में वह पैनापन और उसके हाथों में वह मंझी हुई भाषा है जो सटीक भावों को जन्म देती है। कथ्य और शिल्प एकाकार होकर कविता के रूप में जी उठे हैं। मानो स्वयं शब्द भाव बनकर मानसपटल पर तस्वीर टांकने लगे हैं :—

रोज एक शाम
मेरे आगे ही टूट जाती है

---

1. 'हिन्दी कविता—तीन दशक' / डॉ० राम दरश मिश्र / पृ० 198
2. 'वही'



और एक दिन
गुज़र जाता है मेरे ऊपर से
मेरे भीतर से
मेरे आसपास से
छूता हुआ
कंपाता हुआ, चीरता हुआ ।[3]

आज की कविता की युगबोध पर पकड़ बड़ी गहरी है। समकालीन अनुभूतियों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति साठोत्तरी कवि सहज ही कर देता है। वस्तुतः आज कविता को दशकों में न बांट कर पूर्वआपातकालीन, आपातकालीन और उत्तर-आपातकालीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

अक्सर कवि जो पूर्व-आपातकालीन अवस्था में व्यवस्था के विद्रोह में व्यवस्था के आतंक की बात करते थे वही तथाकथित प्रगतिशील कवि आपातकालीन अन्धकार में कहां खो गए ? उनके मुख पर किसने ताले जड़ दिये थे ?

"जो अभिजात से टकराने के कारण लहूलुहान होने का नाहक ही ढोल पीट रहे थे इनमें से अनेक कवि तो सचिवालयों या साहित्य-अकादेमियों की शोभा बढ़ाते रहे हैं या फिर राजरानी के चरणों का चुम्बन करके स्वयं को कृतार्थ करते रहे हैं। दो वर्ष पहले के अन्धेरे में तो स्थिति और भी भयंकर थी।"[4]

"यह जिरह और जेहाद राजकीय 'पास' पाने की आकुलता भर है। इनकी कविता में यही व्यक्तित्व उजागर है। नरेन्द्र मोहन की स्थिति यह है :—

'किताबों से घिरा / पड़ा हूं चुप / गुम सुम / फड़फड़ाने के बाद / नाउम्मीदी में गर्क ।'[5]

कैलाश वाजपेयी की कविता 'दहशत' की पंक्तियां कितनी मोहक हैं :—

मैं इस व्यवस्था से बुरी तरह घबरा गया हूं ।
जिन्दा बने रहने का दर्द ।

---

3. उदय भानु मिश्र ।
4. नयी कविता : संशयहीन भाषा का अभिजात्य : — डा० जयप्रकाश, शैवाल / अंक 6
5. 'वही'

और दर्द के अहसास पर शर्मिंदा ।
काफी रह लिया ज़िन्दा ।
अब नहीं होता ।[6]

सबके साथ लेकिन ऐसा नहीं है । आपात्‌कालीन स्थिति के तीक्ष्ण बोध की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक शैली से कुछ कवियों ने की है । वे तब भी जिए थे और आज भी उसी तरह जी रहे हैं :—

फड़फड़ा कर
पंख तो चुप हो गए हैं
अलगनी पर किन्तु पिंजरा डोलता है ।
शाख पर पत्ते हिले
फिर थिर हुए हैं
किन्तु उनके मौन भी मुखबिर हुए हैं ।[7]

कुंअर बेचैन की ये पंक्तियां दमन शक्ति से उन्मत्त राज्य सत्ता के प्रति भीतर ही भीतर विरोध की ओर प्रतीकात्मक संकेत करती हुई सूक्ष्म संवेदनाओं को जगा जाती हैं। मौन की भी अपनी भाषा होती है जो शब्दों से भी ज्यादा तीक्ष्ण और अनेक अर्थ देने वाली होती है ।

यही बोध व्यंग्य के रूप में भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'चार कौए उर्फ चार हौए' में और भी तीक्ष्ण होकर उभरा है :—

बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खायें और गायें
वे जिसको त्योहार कहें सब उसे मनायें[8]

आपात्‌कालीन स्थिति से पहले व्यवस्था से विद्रोह करने वाले कवि अब अपने मुखौटे बदल चुके थे। और अपनी भक्ति-भावना के कारण अमर हो गए थे। रुतबों, पुरस्कारों के ढेर उनके पास लग गए किन्तु कुछ अवधि तक, उसके

6. नयी कविता : संवादहीन भाषा का अभिजात्य; डॉ० जयप्रकाश, शैवाल/अंक 6
7. भीतर सांकल बाहर सांकल —कुंअर बेचैन ।
8. त्रिकाल सन्ध्या—भवानी प्रसाद मिश्र ।

बाद वे अपना मुंह छिपाने लगे।

फिर उनमें से कुछ लोग उत्तर-आपात्कालीन स्थिति में नए मुखौटों के साथ उभरे—उनका तर्क था कि हम क्या करते व्यवस्था ही ऐसी थी और हमें ज़िन्दा रहना था। बहुत कुछ ने गुजरे हुए काल का दायित्व सम्पादक-वर्ग पर छोड़ दिया—अपनी ईमानदारी को सम्पादकों की ओट लेकर बघारने लगे। कुछ तो सीधे से सम्पादकों को ही दोषी और बेईमान कहने लगे।

दूसरी आज़ादी के नारे के साथ ही विचारों की स्वतन्त्रता ने नए आयाम तलाशने चाहे। जय-प्रकाश का जन-आन्दोलन ग्राम की ओर के आन्दोलन का संकेत था जो समय के साथ साथ प्रखरता पकड़ता गया। अतः नगरीय परिवेश की घुटन को महसूसता कवि ग्राम-आन्दोलन की ओर उन्मुख होने लगा। शहर अपरिचित लगने लगे, घने जंगलों की माफिक जिनमें हर कोई सहारा लिए बैठा है पर हर कोई दूसरे से छिपा है :—

'मेरा सारा शहर।
घने जंगलों में खो गया है'[9]

और शहर की नगरीय सभ्यता कवि के मानस को कचोटने लगी।

आदमी खुली सड़क पर
बेतहाशा हंसता है
उसका नंगापन उसे नहीं
दूसरों को डंसता है।[10]

'कुंअर बेचैन को भी नगरों में तिल-तिल कर समाप्त होने का दर्द, कृत्रिमता, संशय, प्रदर्शन एवम् यांत्रिकता के बढ़ते हुए सैलाब का आतंक सालने लगता है।'

मीठापन जो मैं लाया था गांव से
कुछ दिन शहर रहा
अब कड़वी ककड़ी है।[11]

और कस्बाई ज़िन्दगी के सफर में वेतन भोगी जनसमूह की विवशता और

---

9. 'ज़िन्दगी तुम कहां हो'—सिद्धनाथ कुमार
10. — वही
11. प्रकर/मार्च 1979

वेदना को अभिव्यक्त करते हुए 'जलते पनघट, बुझते पनघट' में कवि किशोर काबरा का स्वर तड़प उठता है और वह अपने को एक अधफटे कैलण्डर या दूध के समान समझने लगता है। वह नहीं जानता कि जो आधापन उसके पास बच गया है वह सूद ही है या और भी कुछ। किन्तु बात केवल वेतनभोगी की ही नहीं, कस्बाई जिन्दगी में ढुके कारीगर तक के अन्तर में टूटन के अहसास की ध्वनी को महसूस करना है। आज जीवन में विपर्यय आ गया है—इसके भीतर से आहत होकर हर संवेदनशील व्यक्ति गुज़रता है :—

बहार
बासी अखबार
आम्रमंजरी
सिर्फ आनंद की किरकिरी
कोयल
एक धूएं भरी बिगड़ी सी सीटी
भावनाएं बिला टिकट सफर करतीं सिरफिरी ... ।[12]

साठोत्तरी—कविता ने शिल्प में भी नए आयाम तलाशे हैं। लम्बी कविता, लघु कविता, नवगीत आदि एक ही धरातल पर अलग-अलग रूपों में झलके हैं, वहां नई बिम्ब-योजना, प्रतीक-योजना, उपमाओं का नया जाल, सांकेतिक भाषा की अभिव्यञ्जना, मिथकों के प्रयोग आदि ने कविता के मर्म को शीघ्र समझने की, और उससे आनन्दित होने की शक्ति प्रदान की है।

लीलाधर जगूड़ी, श्यामविमल, धूमिल, गंगाप्रसाद विमल आदि तो शिल्प को दुरूहता की राह पर लेजाकर जनकविता से दूर हो गए किन्तु कहीं कहीं पर उनके नए प्रयोग नए कवियों को दिशा निर्देश दे गए हैं।

कमल पुजारी का समय रेखांकन देखें :—

'झुर्रियां समय की स्लेट पर
अबोध समय शिशु की
आढ़ी तिरछी रेखाएं हैं।'[13]

---

12. प्रभाकर माचवे।
13. 'क्षितिज से दूर'—कमल पुजारी।

केदारनाथ सिंह का एक बिम्ब भी देखें :—

शाखों पर जमे धूप के फाहे
गिरते पत्तों से पल ऊब गए
हांक दी खुलेपन ने फिर मुझको
लहरों के डाक कहीं डूब गए ।[14]

साठोत्तरी कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि मिथकों का प्रयोग है। पहले कहीं किसी कविता में पाश्चात्य धरातल पर उभरी हुई सांस्कृतिक घटनाओं का सन्दर्भ मिले तो मिले भारतीय पौराणिक घटनाओं का सन्दर्भ बहुत कम मिला है।

जहां ये मिथक प्रतीक योजना को सुदृढ़ आलम्बन देते हैं वहां काव्य में चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं। प्राचीन और अर्वाचीन को, सूत्र की तरह जोड़ने में सहायक होते हैं। 'अज्ञातवासी' में विष्णु हेब्बार अपने समय की विसंगतियों को महसूसता उबल पड़ता है :—

यों बन्धुओं के होते द्रोपदी बेकस है
पतियों के होते भी बेवा है।—
... ...
भूपति आज भी धृतराष्ट्र है।

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से समकालीन राजनैतिक अवस्था को प्राचीन कालीन अवस्था से जोड़ा गया है।

और आपात्कालीन स्थिति में कृष्ण का आह्वान करते हुए भवानी प्रसाद मिश्र त्रिकाल सन्ध्या में कह उठते हैं :—

में रुका हूं और झुका हूं
आप आयें
और मेरा रथ चलायें
और अठारह दिन आपने
ठीक ही कहे हैं
संघर्षों के दिन हमेशा
अठारह ही रहे हैं।

---

14. केदार नाथ सिंह।

दो चार शब्दों के माध्यम से अपनी अनुभूतिओं को खोलकर भाव जगा देना भी क्षणिकाओं के रूप में इधर खूब प्रचलित हुआ है। विशेषतया सहज सरल शब्दों द्वारा बहुत गंभीर बात कह देना नई कविता में रहा ही पर उसकी पकड़ इन कवियों में बहुत पैनी हो कर उभरी है :—

खूबसूरत होते हैं
उदासी में गाए गीत
तरल होते हैं वे
और स्वच्छ भी
जैसे मेरे आज के आंसू ।[15]

इधर नवगीतों का बड़ा बोलबाला रहा। नवगीत वे गीत हैं जिन में 'नव' पिरोया गया है—नए बिम्ब और नए प्रतीकों की सहायता से, नए अर्थ देने वाले शब्दों के माध्यम से और मानवीकरण अलंकार के प्रयोग से प्रगीत नवगीतों के रूप में मुखरित हो आए हैं। वीरेन्द्र मिश्र, बालस्वरूप राही, उमाकान्त मालवीय, कुमार शिव, देवेन्द्र कुमार, सुरेन्द्र तिवारी, दिनेश सिंह, समो ठाकुर आदि के नाम इस संदर्भ में गिनाए जा सकते हैं।

उमाकान्त मालवीय के गीत की कुछेक पंक्तियां देखें :—

महुआ का मद
फिर पलाश की आंखों में उतरा
यह कैसा गुलाल
बन-बन के अंग-अंग छितरा ।
एक कुंआरी हवा,
छिउल के तन पर लहराती
छांव, तने से हरनी
अपना माथा खुजलाती ।

कविता के अनेक मंच लघु-पत्रिकाओं के माध्यम से उभरे हैं :— अकविता, लहर, वातायन, परिचय, अपरा, विद्या, संज्ञा, ज्ञानोदय, अधुना, दीपन, समदर्शी, ज्योत्सना, कल्पना, ऋतुचक्र, प्रतीक, आलोचना आदि इस सम्दर्भ में ली जा सकती हैं। वैसे इन मंचों की भूमिका पर भी इधर प्रश्न-चिन्ह

15. भवानी प्रसाद मिश्र—त्रिकाल सन्ध्या—खूबसूरत मैं।

जड़े जाने लगे हैं। तभी तो यह कहना पड़ रहा है कि 'अकविता' के शिल्पकारों ने अपने शिल्प की दुरूहता के कारण अपने ही पांव पर कुल्हाड़ी मार ली। तथाकथित जनसाधारण का पल्लू पकड़कर चलने वाले अपनी ही भाषा की सम्प्रेषणीयता से कटकर रह गए। फिर अति मांसलता इनका दूसरा कमजोर पहलु रहा।

गंगा प्रसाद विमल, श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी जैसे अकविता-वादी कुछ समय के लिए घोर व्यक्तिवादी और मांसल कविताओं को एक मंच से उछालने में सफल हो गए पर यह व्यक्तिवादी संगठन जमने से पूर्व ही विलग हो गया।''[16]

इधर समकालीन कविता पर 'विचार कविता' की संज्ञा को थोपा जा रहा है बावजूद इसके कि इस मंच के दावेदार यह मानते हैं कि विचार विचार होते हैं कविता नहीं।

'विचार कविता' हास्यास्पद मुखौटा है जिसे ओढ़कर कालेज की कक्षा में नाटक किया जा सकता है, इससे कविता की सृष्टि नहीं होती।[17] किन्तु यदि एक क्षण के लिए मान भी लिया जाए कि नई कविता में अनुभूतियों से अनु-प्राणित होकर विचार चलने लगे हैं तो प्रश्न उठता है कि कविता और दूसरी विधाओं में क्या अन्तर रह गया है?

'काव्य की प्रकृति भावमूलक है'—नन्ददुलारे वाजपेयी के इस कथन को यह मंच कैसे पचा पाएगा? रागात्मक अनुभूतिओं के साथ जुड़ी यह विधा ही अभी बौद्धिक दुरूहता से परे थी—इसे दुरूहता के साथ जकड़ कर रागात्मक अनुभूतियों को गंवा देना ही अगर इसका औचित्य हो तो इसे कौन रोक सकता है। यदि सीमित रूप में विचारों को अनुभूतियों से अनुप्राणित कर आन्दोलन को दिशा दी जा रही हो तो ऐसा कौन सा समय नहीं था जब कविता ने पाठक को मात्र मनोरंजन दिया हो और सोचने पर मजबूर न किया हो। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

सबसे बड़ी बात तो इसके ठेकेदारों की है--जो जिस पत्रिका में छपते हैं उन्हें केवल उस सम्पादक की रचनाओं में ही विचार लगते हैं या फिर उनके

---

16. सप्तसिन्धु—डॉ० ओम प्रकाश भाटिया।
17. डॉ० ओमप्रकाश भाटिया—'अराज'

अपने मित्रों की रचनाओं में। इसीसे इन आलोचकों और तथाकथित विचारकों की ईमानदारी पर शक होने लगता है।

जम्मू प्रान्त जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्र में भी हिन्दी कविता देश की कुल हिन्दी कविता के साथ-साथ चली है—इसमें कोई संदेह नहीं। यद्यपि आपात्-कालीन स्थिति का सब से कम प्रभाव इस प्रदेश पर पड़ा है तथापि उस मानसिकता से यह प्रदेश अछूता नहीं रहा।

साठोत्तरी काव्य संकलनों में अधिकांश नए कवियों के संकलन हैं। जम्मू के कवियों को 1974 में प्रथम बार एक ही मंच पर जुटाने का श्रेय "चौराहे पर खड़े बारह चेहरे" के सम्पादक जवाहर रैणा को जाता है। साथ ही पूरे जम्मू कश्मीर प्रान्त के हिन्दी लेखकों की रचनाओं को संकलन के रूप में प्रस्तुत करने का, अकादमी के माध्यम से, रमेश मेहता का प्रयास कतिपय कारणों से सब हिन्दी कवियों की रचनाओं को इकट्ठा करने में पूर्णतया सफल नहीं हुआ पर फिर भी एक अच्छा प्रयास था। इनके इलावा लगभग दस उल्लेखनीय काव्य संकलन 1948 तक प्रकाशित हुए हैं जो कवियों के अपने व्यक्तिगत प्रयास हैं। कुछेक काव्य संकलन प्रकाशनाधीन भी हैं। इनके अतिरिक्त अकादमी से छपने वाली पत्रिकाओं शीराज़ा, हमारा साहित्य, स्थानीय सूचना विभाग की ओर से छपने वाली पत्रिकाओं योजना तथा दूसरी स्थानीय पत्रिकाओं—मधुरिमा, घोषवती के साथ देश की अनेक पत्रिकाओं में यहां के कवियों की रचनाएं छपती रहती हैं।

स्थानीय कवियों ने भी सम्पूर्ण देश की मानसिकता के साथ साथ उन तल्खियों को महसूस किया है जिनकी अभिव्यक्ति कुल हिन्दी कविता में हुई है :—

ओ मेरे देश के कर्णधारो
अपनी सभी कमजोरियां—
मेरे कन्धों पर लाद दो।
मेरे मुंह पर जड़ दो ताले
मेरी पीठ पर दाग दो
अपने भारी जूतों के निशान।[18]

---

18. चौराहे पर खड़े बारह चेहरे—डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

श्री ओम गुप्त के स्वर से स्वर मिलाते इस भार को महसूस करते रमेश मेहता—

लाद दिया जाता है
अनचाहे हर बार
हमारे कन्धों पर एक नया फ़र्ज़,
लिख दिया जाता है हमारे नाम
किसी न किसी तरह एक नया कर्ज़[19]

अन्दर ही अन्दर घुटन की आवाज़ को महसूस करता बलनील देवम् का स्वर :—

मानव के उदर को
एक नन्हा सा चूहा
कुतर गया है
विस्फोट की आवाज़ दम तोड़ गई ।[20]

जीवन की अविराम यात्रा में थकान सी महसूस करते आदर्श 'प्रश्न तुमसे' में बचपन की मुस्कान खो जाने का मातम कुछ इन शब्दों में मनाते सुनाई देते हैं :—

मेरे जीवन का संगीत
लहरा लहरा कर सो गया

और इन पंक्तियों के लेखक की कुछ पंक्तियां :—

अधरों का हास
बिगत बचपन सा
न जाने कहां खो गया ।
मैं गरीब हूं !
ओ विश्वासों की संजीवनी पिलाने वालो !
क्यों मेरे साथ मज़ाक करते हो ?
मेरे ऊपर
सफेद टुकड़ों से ढका आकाश

---

19. चौराहे पर खड़े बारह चेहरे ।
20. अन्तिम युद्ध की चाह ।

श्रौर पैरों के तले
सूखे से सड़ी
उपजाऊ ज़मीन ।[21]

आपात्कालीन स्थिति को जिसने देखा हो और इसकी यातना सही हो उसकी अभिव्यक्ति ही सशक्त चित्र प्रस्तुत कर सकती है। बलनील देवम् 'यह सच है' में कहते हैं :—

यह सच है
कि वक्त है तुम्हारी मुट्ठी में कैद
आकाश श्रौर धरती के
सारे अर्थ
तुम्हारी व्यवस्थाओं के लिए हुए हैं
और करते जा रहे हो मेरी ज़िंदगी के तमाम फैसले ।

जिसने घुटन का दर्द सहा हो वही खुले आकाश का आनन्द भी प्राप्त कर सकता है—सब से बड़ा अधिकारी वही है। बलनील देवम् की कविताएं इस बात की साफ गवाही देती है।

आपात्कालीन स्थिति का विरोध आज़ाद कुमार नाहर की कविता में खुलकर सामने आया है। वह इस समूची व्यवस्था की विसंगतियों को पहचान गया है और कहता है :—

श्रावाज़ उठाने वाला हर शख्स यहां मरता है
फिर भी आवाज़ उठायें, श्रपना यह दिल करता है ।[22]

किन्तु यही आवाज़ घुटन में दब कर रह जाती है :—

जिन्दगी अब बोझ सी लगने लगी है कांधों पर
लम्हा लम्हा उम्र का बेवक्त जो ढलते देखा ।

इसके बावजूद जम्मू के इस क्षेत्र में ऐसे कविनुमा आदमियों की कमी नहीं जो मात्र आकाशवाणी अथवा शीराज़ा (हिन्दी) में छपने के लिए ही लिखते हैं। और अब तो स्थानीय सूचना विभाग की ओर से प्रकाशित योजना में भी छपने का

21. अधूरा मैं—प्रश्न तुमसे। पृ० 49
22. बलनील देवम्—अंतिम युद्ध की चाह।

उनका प्रयास श्लाघनीय है। अपने को प्रगतिवादी और प्रगतिशील धारा से जोड़ने वाले ये तथाकथित कवि तो खुलेआम प्रगतिशील धारा के, जम्मू-कश्मीर में अपने को प्रवर्तक मानते रहे हैं। और जब ये आलोचक बन जाते हैं तो इनसे खुदा बचाए ! कुछ समय पहले आकाशवाणी के जम्मू केन्द्र से जम्मू की हिन्दी कविता पर वार्ता प्रसारित हुई थी जिस में वार्ताकार ने चालीस, पचास और यहां तक कि साठ के दशक को भी अपनी मसीही में समेट लिया था। बाकी जो बचा उसे अपने मित्रों में बांट दिया। मजे की बात यह कि उनमें से उन की वार्ता का केन्द्रबिन्दु कुछ ऐसे कवि थे जिन्हों ने हिन्दी में कभी लिखा ही नहीं— कहीं इक्का दुक्का रचना किसी टटपूंजिया-पत्रिका में छपी हो तो कह नहीं सकते। यदि किसी पत्रिका में छपे तो उस पत्रिका के सम्पादक के गुणगान और आकाशवाणी से वार्ता प्रसारित की तो वहां के कर्मचारिओं के गुणगान—अभिप्राय यह कि उन पर यह उक्ति 'गंगा गया गंगा राम, यमुना गया यमुना दास' सटीक बैठती है। वैसे देखा जाए तो व्यवस्था के नाम पर लहूलुहान होने वाले, अकादमियों और आकाशवाणी केन्द्रों में कान्ट्रेक्ट हेतु चक्कर लगाने वालों की कुल राष्ट्रीय-परम्परा को इन्होंने पूरी निष्ठा से निभाया है। और इस तरह कुल हिन्दी कविता-आन्दोलन के एक विशेष पक्ष को सुदृढ़ किया है। इस पर भी—वे शोर मचाते हैं 'हाय सम्पादक खा गया हमें प्रोग्राम नहीं मिलते !'

दूसरी ओर सचमुच व्यवस्था से टक्कर लेने की सामर्थ्य कुछ कवियों में है—वे सच को सच कहना जानते हैं और झूठ का पर्दाफाश-करने की हिम्मत रखते हैं—सब कुछ गंवाने के बाद भी गुमी हुई शक्ति को संचित-करने में समर्थ हैं :—

सब कुछ नोचे लेने के बाद
अब मेरे पास
कुछ भी नहीं रह गया
जो तुम अपनी बाहों में भर सको
मात्र उस सूर्य के सिवा—!
भोथरी हुई मेरी देह
खून के कतरों में डूबी
'उससे'
शक्ति......प्रेरणा......आशा

का टानिक पाती है।[23]

आदमी पहली तारीख का किस शिद्दत से इंतज़ार करता है और कि उसके लिए पहली तारीख का क्या अर्थ है यह कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। पंख टूट जाने पर खुली हवा में उड़ने की ललक नहीं मरती! निम्नांकित पंक्तियां ऐसे ही एक भुक्तभोगी का हलफनामा बन जाती हैं—

टूटे पंखों को
आजाद हवा से प्यार
हर पहली तारीख से बहुत पहले
नोटों की गठ्ठी का इन्तज़ार।[24]

नगरीय परिवेश की घुटन को यहां के कवि दूसरी आज़ादी से बहुत पहले महसूस करते रहे हैं। वे नगरीय परिवेश की छटपटाहट से भाग कर आकाश तले जीना चाहते हैं जहां व्यक्ति व्यक्ति की पहचान हो, जहां रिश्तों के टूटने की गन्ध न आती हो, जहां-ईर्ष्या का बारूद अपना असर खो बैठता हो :—

सोचता हूं। तुरंत छोड़ दूं
दूर दूर फैला
यह शहर आपका।

× × ×

इत्र में डाली जाती है
सुगन्ध बारूद की
धुएं से भरा रहता है
सारा आकाश
और
धरती सोग मनाती है।[25]

और शहर की तल्खियों से टूटकर गांव की ओर पलायन करने वाले का पीछा करता हुआ कस्बाई काला साया—

---

23. सूर्य बनने का इन्तजार-बलनील देवम्-अन्तिम युद्ध की चाह।
24. डॉ ओम प्रकाश गुप्त—चौराहे पर खड़े बारह चेहरे।
25. सुतीक्ष्ण-कुमार आनन्दम्—शीराज़ा/सित० 73.

हर शाम जब मैं
शहर से गांव की ओर चलता हूं
पराग के हर कण से
लिपटता है—
कस्बाई शाम का
काला साया ।[26]

जम्मू के हिन्दी कवि समग्र हिन्दी-कविता के आन्दोलन के साथ जुड़े हैं। नए बिम्ब, नयी प्रतीक योजना, उपमाओं के नए आयाम इन कवियों ने तलाशे हैं। इधर मिथकों का भी खुल कर प्रयोग होने लगा है।

इस क्षेत्र में उषा व्यास 'छवि' की कविता का अपना स्वर है, शब्दों के माध्यम से रेखांकन करना और रेखा चित्र को शब्दों के माध्यम से ही रंग देना उनकी लेखनी की खूबी है। ये तस्वीरें पाठक के मानसपटल पर वैसे ही टंक जाती हैं :—

सोनाली सांझ के
गंध डूबे आमंत्रण में
खोजते रहे चुपचाप ....
लहके लहके रौशनी बिंधे बादल
झनकते नूपुरों के अर्थ
और शापित आकाश की रगों में
टीसता रहा धुआं धुआं दर्द [27]

जहां एक ओर दृश्य-स्पर्श है वहीं छवि-स्पर्श की स्वर लहरियों में पाठक गुम हो जाए तो इसमें कुछ भी अनोखा नहीं लगेगा।

शीश महल तुहिन के
नृत्य करती चांदनी के
हो गए हैं मूक नूपुर
तारिकाएं सो रही हैं गोद में रख एक-तारे
हर सिंगार झरे भिनसारे ।[23]

---

26. जवाहर रैना—शीराज़ा/सितम्बर 73
27. उषा व्यास 'छवि'—शीराज़ा अंक 15.
28. उषा व्यास छवि—शीराज़ा/सितम्बर 1973.

ध्वनि-स्पर्श तथा बिम्ब योजना में निर्मल विनोद का स्वर भी कुछ अलग हट कर है :—

गुलमोहर झरने लगा है
सर्र—झर—झर
सर्र—झर—झर
पतझरी अंदाज भी क्या खूब !
ठिठुरती-सी, पीत पग की दूब
विकल मन की रागिनी हो गई
मर्म-भेदी तान मर-मर ।[29]

नए लिखने वालों में से बिम्ब की सार्थकता को पहचाना है– अशोक कुमार ने । इनकी कविता परिपक्व चिंतन का प्रमाण प्रस्तुत करती है :—

तुम अपने शब्दों से
सिन्दूरी क्षितिज को मत कुरेदो
सारी लाली बह जाने के बाद
प्राप्त होने वाली रात में
परिरम्भण की स्थिति
कितनी विस्फोटक होगी ?

और इन पंक्तियों के लेखक की कविता का एक अंश देखें :—

याद है तुम्हें
जब समय गूंगे प्रहरी की तरह थम गया था
दोनों हाथों से रौशनियों को उलीच
हमने उस दिन के सूर्य को जला दिया था
सहकता सा उसका बिम्ब
कई रोज तक शीशे की पारदर्शक
दीवारों के उस ओर
छटपटाता रहा था—अपनी रिहाई के लिए ।[31]

मिथकों का प्रयोग कविता और उसके कथ्य को सूक्ष्मता प्रदान करता

29. निर्मल विनोद—पत्थरों का दरिया ।
30. अशोक कुमार—शीराज़ा मार्च 1979.
31. अशोक जेरथ—शीराज़ा

है—अर्थग्रहणता और सम्प्रेषणीयता में सहयोगी होता है—कविता के मर्म को समझने के लिए दिशा देता है—साठोत्तरी हिन्दी कविता में मिथकों का प्रयोग खूब खुलकर होने लगा है :—

हमें नहीं चाहिए वह रहस्य
जो हमें इस चक्रव्यूह से बाहर कर देगा
हमें अभी हर योद्धा का हाल पूछना है
अब अभिमन्यु नादान नहीं ।[32]

डॉ॰ ओम गुप्त की कविता, "एक नए सूरज का उदय" में देखें किस तरह महापुरुषों की विवशताओं के माध्यम से कविता के कथ्य को खोला गया है :—

रवीन्द्र रोकर हो जाता है खामोश
नजरुल-इस्लाम काफिर का नाम पाता है
इन्सान के मन में—
जब कभी एक नया सूरज उगा करता है
अन्धेरा झपट कर उसे दबोच लेता है ।
इन्सान के इतिहास का
यह रिवाज अजीब
पैगम्बर बनने से पहले
जेलों में सड़ा करते कितने मुजीब !
कोई ईसा उठाए चलता है क्रास,
कोई लिंकन
कोई लेनिन
कोई गान्धी
अन्धेरे को रौशनी दिखाता है ।

लघु कविताओं और क्षणिकाओं के नाम से भी इधर अनेक सफल प्रयोग हुए हैं—सहज सरल छुट-पुट शब्दों के माध्यम से विचारों को बुन देना कठिन कार्य तो है पर असम्भव नहीं । रमेश मेहता की लघु कविता देखें :—

---

32. स्वावलम्बन—डॉ॰ आदर्श पीयूष ।

दीखता
जो चेहरा
वही उदास है।
कच्ची छत पर
पड़ रही
ज्यों
जोर की
बरसात है।

और निर्मल विनोद भी थोड़े से शब्दों से जो तस्वीर बना देते हैं :—

तुमने
मुझसे कहा
'स्वयं तुम भी कविता हो'
सच मानो
मैं गया सरापा
भीग भीग सा
एक धुन्ध
ठण्डी सी
घुमड़ रही भीतर
वाष्प
ऊष्म बदली की छुअन
फुरहरी बाहर।

नवगीतों और हिन्दी में ग़ज़ल के छुटपुट प्रयास भी इस प्रदेश में हुए हैं—निर्मल विनोद, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्, बलनील देवम् आदि के नाम इस सन्दर्भ में गिनाए जा सकते हैं।

जम्मू के कवियों की वाणी जम्मू से बाहर भी आकाशवाणी और पत्रिकाओं के माध्यम से पहुंचती है। कुछेक कविवृन्द तो राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। अनेक संग्रहों पर समीक्षाएं भी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस संदर्भ में युवा लेखक संघ द्वारा प्रकाशित **'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे'** पर लिखी हुई कुछ पंक्तियां मैं उद्धृत करना चाहूंगा :—

'यह कविता संग्रह जम्मू क्षेत्र के हिन्दी रचनाकारों की कविता की बानगी प्रस्तुत करता है। संग्रह की प्रायः सभी कविताओं में सामाजिक परिवर्तन की तड़प मौजूद है। सतत् अग्रगामी इन युवा कवियों में रमेश मेहता और अशोक जेरथ की कविताएं उच्च-कोटी की हैं। निर्मल विनोद के स्वर में कल्पनाशीलता है।[23]

दो बातें नए मंचों के बारे में भी। अकविता का खेमा यहां पर भी स्थापित करने का कुछ लोगों ने प्रयास किया था पर लगने से पूर्व ही वह ढह गया। अब विचार कविता को समकालीन कविता के रूप में लेकर खूब शोर उठा है। एक महोदय ने तो अपने आपको इस क्षेत्र का विचार-कविता का प्रवर्तक भी घोषित कर दिया है। ये 'सेल्फ-स्टाइल्ड' विचार कविता के क्षेत्रीय प्रवर्तक, अपने को पहले नई कविता के मूर्धन्य पुजारी कहते रहे हैं। मशाल हाथ में लिए युवावर्ग के आगे दिशानिर्देश करते रहे हैं (उनके अनुसार)। ईश्वर उनकी कामना को सफल करे।

उपर्युक्त कवियों के इलावा अनेक नई प्रतिभाएं इस क्षेत्र में उतरी हैं— एक तो उनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं हो सकीं दूसरे इस सिलसिले में जो रचनाएं मिलीं वे कहीं लगाई नहीं जा सकीं। सुभाष शर्मा, चन्द्रोदय शर्मा, राकेश मोहन, श्याम रैणा, हिन्द्र कुमार ओम 'मानव', सुशान्त चौधरी प्रभृत्ति के नाम इस संदर्भ में लिए जा सकते हैं। वैसे इनसे इस अहिन्दी भाषी क्षेत्र को बहुत आशाएं हैं क्योंकि यह सब सम्भावना-सम्पन्न कवि हैं।

---

38. मंजु जैन : नवभारत टाईम्स, (दिनांक 3'-7-75)

रेडियो कश्मीर की हिन्दी कविता को देन

—दीदार सिंह

जम्मू-कश्मीर को इस बात का गौरव प्राप्त है कि यहां की लगभग पचास लाख की आबादी के लिए तीन रेडियो स्टेशन हैं जो कि प्रदेश की तीनों इकाइयों के मुख्य नगरों में स्थापित किए गए हैं—जम्मू, श्रीनगर और लेह में। श्रीनगर में व्यापार-प्रसारण और दूरदर्शन की वृद्धि भी हो चुकी है। वय की दृष्टि से जम्मू का रेडियो स्टेशन सब से पुराना है जिसे पहली दिसम्बर 1947 को चालू किया गया था। इसके दस महीने बाद 21 अक्तूबर 1948 को श्रीनगर का केन्द्र चालू हुआ। फिर 13 अप्रैल और 16 दिसम्बर 1954 को क्रमशः श्रीनगर और जम्मू केन्द्रों को आकाशवाणी ने अपने नियन्त्रण में ले लिया। लेह में रेडियो स्टेशन का श्रीगणेश 25 जून 1971 को हुआ। इस प्रकार प्रायः प्रदेश की सारी जनसंख्या को प्रसारण के दायरे में ले लिया गया। लेह और श्रीनगर की तुलना में जम्मू का ट्रांसमीटर अधिक शक्तिशाली है। छटी पंचवर्षीय योजना के दौरान श्रीनगर में एक शक्तिशाली ट्रांसमीटर तथा जम्मू में दूरदर्शन का 'रिले' केन्द्र लगाने की योजना है।

प्रसारण के तीन मुख्य उद्देश्य माने जाते हैं— शिक्षा, मनोरंजन तथा जानकारी देना। जम्मू कश्मीर जैसे पर्वतीय प्रदेश के लिए प्रसारण की विशेष महत्ता है क्योंकि यहां दूर-दराज़ के कठिन क्षेत्रों में यातायात तथा शिक्षा की उतनी सुविधाएं नहीं जितनी मैदानी क्षेत्रों में हो सकती हैं। परिणामस्वरूप लोगों तक पत्र-पत्रिकाएं समय पर नहीं पहुंच पातीं।

फिर यहां कई भाषाएं-उपभाषाएं बोली जाती हैं जो भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं। एक ही भाषा को लोग अलग-अलग लिपियों में भी लिखते हैं— अर्थात् एक भाषा को सभी समझ-बोल लेते हैं लेकिन एक लिपि के अतिरिक्त दूसरी लिपि में लिख-पढ़ नहीं सकते। ऐसी स्थिति में प्रसारण अथवा रेडियो एक सम्पर्क भाषा का काम करता है। क्योंकि जिस भाषा में प्रसारण हो रहा

हो—उसे अधिकतर लोग समझ सकते हैं और रचना का रसास्वादन कर सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि रेडियो प्रचार का एक सशक्त माध्यम है। सरकार द्वारा इसका दुरुपयोग किए जाने का आरोप भी प्रायः लगाया जाता है। प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार की नीतियों, कार्यवाइयों को प्रसारण द्वारा जनता तक पहुंचाया जाता है। इसमें विपक्ष के मत को भी पर्याप्त महत्त्व दिया जाने लगा है। प्रचार के यह सब आयाम शिक्षा और जानकारी का ही हिस्सा हैं। जहां तक प्रचार की बात है तो इसमें नव-निर्माण तथा सरकारी नीतियों के अतिरिक्त अपने क्षेत्र की भाषाओं, रीति-रिवाजों, सभ्यता-संस्कृति और कलाओं का प्रचार भी होता है। यह प्रचार कभी मनोरंजन के रूप में, कभी शिक्षा के रूप में और कभी जानकारी के रूप में होता है। किसी भी प्रदेश के प्रसार-केन्द्र से उस प्रदेश का व्यक्तित्व सामने आता है। जम्मू-कश्मीर के लोक संगीत, लोक-साहित्य तथा अन्य कलाओं के बारे जितनी जानकारी प्रसारण द्वारा दूसरों तक पहुँची है उतनी प्रकाशन द्वारा नहीं। कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उर्दू, लद्दाखी, गोजरी और भद्रवाही आदि इस प्रदेश की भाषाओं के अतिरिक्त राष्ट्र भाषा हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में भी प्रसारण होते हैं। इन सभी भाषाओं तथा इनके लोक-साहित्य, लोक-संगीत को प्रसारण द्वारा पूरा प्रोत्साहन मिल रहा है।

उपरिलिखित पृष्ठभूमि में यदि रेडियो कश्मीर की हिन्दी कविता की देन को देखें तो इतना कहा जा सकता है कि जितना रेडियो ने हिन्दी कविता को दिया उतना यहां की कोई भी एक संस्था नहीं दे पाई है। वास्तव में हिन्दी कविता को रेडियो की देन न मानकर अगर हम यों कहें कि 'हिन्दी कविता की रेडियो कश्मीर को देन' तो अधिक उपयुक्त होगा। कविता को कोई क्या दे सकता है—भाषा, विषय और प्रोत्साहन। हां प्रोत्साहन तो रेडियो ने दिया—लेकिन यह हिन्दी कविता ही है जिसने अपने योगदान से रेडियो के कार्यक्रमों को चार चांद लगाए हैं।

यों तो आदान-प्रदान चलता ही रहता है लेकिन मेरे विचार में रेडियो हिन्दी कविता का अधिक ऋणि है न कि हिन्दी कविता रेडियो की। कविता होगी तभी रेडियो पर आएगी–कविता ही नहीं होगी तो रेडियो अपने आप उसे पैदा नहीं कर सकता। रेडियो तो एक माध्यम-मात्र है जिसके द्वारा कवि की रचना, उसी की वाणी में, पाठकों, श्रोताओं तक पहुंचती है—अनपढ़ और

पढ़े-लिखे सभी प्रकार के श्रोताओं तक एक समान और शीघ्रातिशीघ्र। प्रकाशन द्वारा कोई रचना पाठकों तक बहुत देर से पहुंचती है। रचना के प्रणयन और प्रकाशन तथा वितरण में महीनों और वर्षों का अन्तर आ जाता है। लेकिन रेडियो पर तो आप आज ही अपनी रचना लिखकर आज नहीं तो कल तक प्रसारित कर सकते हैं। कवि के लिए यह कितनी बड़ी सांत्वना है कि उसकी ताज़ा-तरीन रचना पाठकों या श्रोताओं तक पहुंच गई। सामयिक महत्त्व और संदर्भ की कविताओं पर यह बात और भी ज़ोर से लागू होती है। रचना पत्र-पत्रिका या पुस्तक में जब तक छपेगी तब तक कवि के मन में उसकी ताज़गी के प्रति उतना उत्साह नहीं रह जायेगा; छप भी गई तो वह कितने लोगों तक पहुंच पाएगी—पहुंच भी गई तो उसे कितने लोग पढ़ेंगे ? लेकिन वही रचना जब प्रसारित होगी तो उसे लाखों-करोड़ों लोग सुनते हैं—देश के अंदर ही नहीं बाहर भी।

प्रदेश विशेष के लिए संयोजित कार्यक्रम यद्यपि उस अंचल की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर तैयार किया जाता है किन्तु एक बार वायु-मंडल में पहुंच जाने पर वह सभी सीमायें तोड़ डालता है अतः प्रदेश विशेष की तुलना में इसे कहीं अधिक लोग, दूसरे प्रदेश विशेष के भी, सुनते हैं। नेपाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, पाकिस्तान तथा कुछ अरब देशों तक जम्मू से प्रसारण सुना जाता है। इस बात की पुष्टि उक्त स्थानों से आने वाले श्रोताओं के पत्रों से होती है। विशेषकर रात्रि के समय इन स्थानों पर जम्मू के कार्यक्रमों की रिसैपश्न (Reception) अच्छी होती है। अब आप ही अनुमान लगाएं कि उक्त स्थानों और प्रसारण केन्द्र के मध्य कितना फासला है—बीच में कितने प्रदेश पड़ते हैं और उन प्रदेशों के कितने लोग सुनते होंगे। ये सब कहने का अभिप्राय यही है कि रेडियो कवि की रचना को एक साथ लाखों नहीं अपितु करोड़ों श्रोताओं तक पहुंचा देता है—और वह भी कवि की अपनी आवाज़ में, उसके अपने अंदाज़ में—यही रेडियो की हिन्दी कविता को सबसे बड़ी देन है। सम्प्रेषणीयता के संदर्भ में देखें तो कहना न होगा कि कवि या लेखक की यही तो सब से बड़ी आकांक्षा होती है कि उसकी रचना लोगों तक पहुंचे और रेडियो उसकी इस आकांक्षा को झट पूरा करता है—साथ में लेखक की आवाज़ भी लोगों को सुनने को मिल जाती है। उन्हें स्वयं पढ़ने का प्रयास नहीं करना पड़ता अपितु कवि स्वयं उनके लिए पढ़कर उनके कानों में रस घोल देता है।

यह तो हुआ एक पहलू।

दूसरा पहलू है रेडियो कितने कवियों को सामने लाता है—नई प्रतिभाओं की कितनी तलाश करता है। और तीसरा पहलू है देश के सुप्रसिद्ध कवियों को सुनने में सहायक होता है।

उक्त अन्तिम दो पहलुओं पर अब हम विस्तार से बात कर सकते हैं।

प्रदेश में मान्यताप्राप्त हिन्दी कवियों में से कोई भी ऐसा कवि नहीं होगा जिसने रेडियो पर अपनी कविता न प्रसारित की हो। वरिष्ठ कवियों के अतिरिक्त नये और युवा कवियों को भी प्रोत्साहन दिया जाता है और वे अपनी रचना प्रसारित करने का अवसर पाते हैं--चाहे वे युव-वाणी से ही क्यों न शुरू करें। आखिर जितने भी कविता-पाठ के कार्यक्रम होते हैं उनमें स्थानीय कवि ही तो भाग लेते हैं। और फिर स्थानीय कवि भाग लें या बाहर के—सेवा तो हिन्दी कविता की ही है। देखा-देखी नये कवियों को भी शौक़ पैदा होता है। कई बार ऐसा भी हुआ कि किसी व्यक्ति ने एक या दो कविताएं ही लिखीं और उन्हें ही लेकर रेडियो स्टेशन पहुंच गया कि उसे इन्हें प्रसारित करने का अवसर दिया जाए।

कविता-पाठ के अतिरिक्त जितने हिन्दी गीत प्रसारित होते हैं—वे भी तो कविता का ही अंग हैं। संख्या की दृष्टि से भी देखें तो रेडियो कश्मीर के तीनों केन्द्रों से जितनी कविताएं एक वर्ष में प्रसारित होती हैं उतनी कई वर्षों में भी प्रकाशित नहीं होती होंगी।

बात हिन्दी कविता की है अतः प्रदेश के हिन्दी कवियों के नाम गिनाने का ही यह अवसर है—मैं ऐसा नहीं मानता। कारण स्पष्ट है कि यदि नाम गिनने लगें तो शायद कोई भी नाम अछूता नहीं रहेगा जिसने अपनी कविता प्रसारित न की हो। इस से किसी कवि को यह पता लगता है कि दूसरों की तुलना में उसका स्तर कैसा है या तुलना में दूसरों की कविता किस स्तर की है। यों उसे और अधिक उन्नति करने की प्रेरणा मिलती है।

फिर दूसरे केन्द्रों से रिकार्डिंग मंगवा कर देश के जाने माने कवियों को भी सुनने का अवसर मिलता है। रेडियो स्टेशन द्वारा प्रायः वर्ष में एक-आध अखिल भारतीय हिन्दी कवि सम्मेलन करवाया जाता है—जिसमें देश के अन्य भागों से जाने-पहचाने कवि भाग लेते हैं। इन कवियों को देखने और उनकी कविता सुनने का अवसर मिलता है। ऐसे कवि सम्मेलनों में स्थानीय कवि भी भाग लेते हैं और उन्हें यह परखने का अवसर मिलता है कि बाहर के कवियों

की तुलना में वे कहां खड़े हैं। यों स्थानीय कवियों का बाहर के कवियों से सम्पर्क भी स्थापित होता है। बाहर से आए कवियों की रिकार्डिंग फिर सभी श्रोताओं के लिए प्रसारित की जाती है। यह मानना पड़ेगा कि यह रेडियो ही है जो इन बड़े-बड़े सुविख्यात कवियों की रचनाएं उन्हीं की अपनी आवाज़ों में श्रोताओं तक पहुंचाता है।

अतः रेडियो कश्मीर और हिन्दी कविता दोनों परस्पर घनिष्ट मित्र के समान हैं—दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं और दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ रहे हैं।



कश्मीर के युवा कवियों की हिन्दी कविता

— डॉ० अनिल गोयल

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना के बदलाव के साथ-साथ हिन्दी-साहित्यकार की विश्व के समानान्तर प्रगति पथ पर बढ़ने की आकांक्षा बल पकड़ने लगी। फलत: पिछले तीस वर्षों में हिन्दी कविता, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध जैसी साहित्यिक विधाओं ने उन्नति की, समस्त लेखन ढर्रा बदला तथा बौद्धिकता को चुनौती के रूप में ही नहीं जीवन की अभिन्न आवश्यकता के रूप में स्वीकृति मिली।

जहां हिन्दी साहित्यकार ने विश्वसाहित्य की तुलना में उन्नति करने का प्रयास किया वहां प्रादेशिक स्तर पर हिन्दी साहित्यकार ने कुछ ऐसे प्रयास किए जिन्हें कसौटी पर परखा जा सके तथा उनका मूल्यांकन किया जा सके। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है सन् 1979 में प्रकाशित होने वाला कश्मीर प्रदेश के नये-पुराने अट्ठारह कवियों[1] की कविताओं का संकलन **'वितस्ता के नये चरण'**।

'वितस्ता के नये चरण' सामयिक हिन्दी काव्य की नवीन प्रवृत्तियों का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। कश्मीर जैसी मनोरम जगह के आकर्षण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य को आत्मसात करके यहां के युवा कवियों ने अपनी अनुभूतियों के अन्तर्बाह्य द्वन्द्व, सामाजिक संबंधों की जटिलता, राजनीतिक संक्रांति तथा नये-पुराने मूल्यों की टकराहट को अपनी भाव.शैली द्वारा व्यक्त किया है। आधुनिक यांत्रिक सभ्यता तथा बौद्धिक चेतना के कारण दम तोड़ती हुई जीवन शक्ति को इन कवियों ने संवेदना के धरातल पर स्वीकारा है।

सोमनाथ कौल की तीन कविताएं 'पगडंडी का पत्थर', 'बैसाखियां' तथा

---

1. प्रस्तुत लेख में कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि डॉ० रमेश कुमार शर्मा तथा डॉ० अयूब प्रेमी की कविताओं को छोंड़ केवल नये युवा कवियों की कविताओं की ही चर्चा की गई है।

'रद्दी की टोकरी' यांत्रिक सभ्यता के दबाव में मनुष्य के भावों को अभिव्यक्ति देने वाली बौद्धिक स्तर की कविताएं हैं जिनमें अस्तित्व संबंधी मूल्यों की परख बड़ी पैनी दृष्टि तथा सरल भाषा में हुई है। 'पगडंडी का पत्थर' में कवि ने संघर्षों के मध्य से गुजरती हुई ज़िन्दगी के अनुभवों का अंकन मिथ के माध्यम से किया है। व्यक्ति का अस्तित्व पगडंडी पर पड़े हुए पत्थर के समान है जिसे आपदाओं के दौर से गुजरते हुए चाहे-अनचाहे जीवन बिताना है :—

मुझे मिली यहां केवल
यह, मौन शान्त
वासुकी-सी टेढ़ी, नीरस पगडंडी
जो चाहने, अनचाहने पर भी
मुझे बरबस घसीट लेती है।''

अस्तित्व चिंतन के धरातल पर ही कवि ने 'बैसाखियां' में जीवन में व्याप्त घुटन और कुंठा को वाणी दी है तथा संबंधियों की छद्मजन्य सहानुभूति पर व्यंग्य किए हैं :—

''शायद
तुम्हें अब मेरा ही नहीं
मेरी बैसाखियों का अस्तित्व भी खटकता है।...
मैं और मेरी बैसाखियां
मुझे मुबारिक,
तुम और तुम्हारी सहानुभूति
तुम्हें मुबारिक !''

सोमनाथ कौल की ही कविता 'रक्त के फूल' शोषित वर्ग के गूढ़ जीवन संदर्भों से जुड़ी हुई कविता है। कवि ने इसमें शोषक वर्ग के सौन्दर्य-बोध पर व्यंग्य करते हुए श्रमजीवी वर्ग की रोज़ी-रोटी की समस्या पर दृष्टिपात किया है। कविता में प्रयुक्त 'सीज़न' तथा 'स्नो मैन' जैसे अंग्रेज़ी शब्द भावों को पैने ढ़ंग से स्पष्ट करते हैं।

शायरीनुमा शिल्प विन्यास किया है श्यामा सौंधी ने 'भूल' कविता में। हर दो पंक्तियां अपने अर्थ-गाम्भीर्य के अहसास से पाठक को झकझोर जाती हैं :—

"फर्ज के तकाजों ने मुझको लूटा है
फरिश्तों ने खुद ही मुझको ग़म के मयखाने भेजा है"

× × ×

मैं खुद अपने कन्धे पे अपनी लाश हूं,
अपनी खुशियों के जनाज़े की आखिरी आवाज हूं।"

'आंसू' कविता में आकांक्षाओं के स्वर्ण महल ढह जाने के कारण मर्म वेदना स्वरूप निकलने वाला आह का अनुगामी आंसू अभिव्यक्ति पाता है। कुल मिला कर सौंधी की 'आह', 'भूल', 'जलता अंधेरा' तथा 'आंसू' आत्मव्यंजक कविताएं हैं जिनमें कवयित्री ने विगत अनुभवों के आधार पर वर्तमान को सहेजने की चेष्टा की है।

डॉ० विजयमोहिनी कौल की 'आहटें' कविता का शब्द विधान सरस एवं मन लुभावना है। इसमें नारी हृदय की मासूमियत सहज रूप में उभरी है। इन्हीं की 'एक अनुदृष्टि' नवगीत के रूप में लिखी गई कविता है जिसके भाव और भाषा रोचक ही नहीं प्रत्युत महादेवी वर्मा की कविताओं की तरह संवेदना लिए हुए है :—

"मैं अश्रु बिन्दु, क्यों ढुलक-ढुलक
मोती बनने की आस करूं
जो हो न सका, वो चाह लिए
क्यों अपने से परिहास करूं..."

वीणा कुमारी 'एक तल्लीन स्थिति' में चेतन मन के जड़ होने की विवशता को दोहराती हैं तो 'द्वन्द्व' में भावों तथा बौद्धिकता का जटिल द्वन्द्व प्रस्तुत करती हैं। एक हल्के स्नेहिल स्पर्श की अनुभूति में प्रतीक्षारत भाव सिमट तो जाते हैं परन्तु बौद्धिक जटिलता वातावरण को एक अबूझ प्रश्न से बिंध जाती है और विवश व्यक्ति सोचता है :—

"सुखद एकांत का
अर्थ कहां रहा।"

मिथ के प्रयोग, व्यक्तित्व के बिखराव तथा अकविता का शिल्प लेकर उपेन्द्र रैणा ने 'पर्यायवाची', '?' और 'देवता' कविताओं की रचना की है। 'पर्यायवाची' में मिथ का प्रयोग है और व्यक्तित्व का द्वित्व है और मानसिकता

तृतीय आयामी हो गयी है। व्यक्तित्व का द्वित्व इस प्रकार लक्षित होता है :—

"मेरे पर्यायवाची हो तुम
परन्तु तुम 'मैं' नहीं।"

परन्तु विडम्बना यह है कि व्यक्ति का चिर संचित 'मैं' भी उसे पराजत कर जाता है क्योंकि सोच रूप में 'मैं' निखार पा जाता है पर सामाजिक स्तर पर प्राय: बौना रह जाता है :—

"खींच-खींच कर लकीरें
तुम स्वयं बन पड़े हो
आदि से अंत तक
एक लकीर ··· ···
कर चुका है, तुम्हारा—
अपना
'मैं' भी तुम्हें पराजित।"

इसी खंडित व्यक्तित्व की पराजित आकांक्षाएं इतिहास रचती हैं। '?' कविता में और 'स्वप्न अन्तत: स्वप्न ही हुआ करते हैं' में इसे विश्लेषित किया है रैणा ने—'देवता' कविता में व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से। कविता में सामाजिक वर्गभेद पर कटाक्ष करते हुए रैणा कहते हैं :—

"अस्पर्शनीय लोगो !
हाथ दोनों बन्द थे मेरे
छू न सका किसी भी आधार को
मैं—
अनिवार्यत: जुड़ा हूँ मैं भी
किसी आकार से।"

'बेचारे पांडव : बेचारी द्रौपदी' अग्निशेखर की कविता है जिसमें मिथ का प्रयोग है। द्रौपदी चीर-हरण वाला प्रसंग लेकर कवि ने आधुनिक राजनैतिक स्वार्थ लिप्सा तथा नकाबों में उलझी हुई नैतिकता का पर्दाफ़ाश किया है :—

"तो आज
जो द्रौपदी नंगी हो गई,
अपमान में कोई पांडव न उठा
कोई शाप न गूंजा

कोई मुट्ठी न किसी
और न ही कोई कृष्ण आज
उसकी आबरू की रक्षा में
आ उपस्थित हुआ ।"

अग्निशेखर की कविता 'समुद्र जो फैला है' में नागरिक प्रेम का दबा हुआ रूप मिलता है तो 'रात' में जीवन रूपी मिलती रात्रि का चित्रण है जो जीवन के समस्त उजालों को मुष्टिगत किए है ।

सरला कौल की 'कैक्टस' कविता संबंधों के विघटन को रूपांकित करती है । कविता में व्यंग्य यूं है कि सभ्य लोग जिस चाव से कैक्टस को ड्राइंग रूम में शोभा हेतु सजाते हैं उतनी ही कड़वाहट से रिश्तों को निभाते हैं । इनकी 'आधुनिक उपचार' अस्पतालों में मरीज़ों से होने वाले निर्मम व्यवहार पर आधारित व्यंग्य प्रधान कविता है जहां स्वार्थान्ध कर्मचारी जंग लगे पुराने यन्त्रों को सरजरी में प्रयुक्त करते हैं और सही व्यक्ति को 'टिटेनेस' का रोगी बना कर अस्पताल से छुटटी दे देते हैं ।

'हर टुकड़े पर मेरे ही हस्ताक्षर' में महाराज कृष्ण संतोषी ने टूटन संबंधी अनुभूति को अन्तःब्रह्म स्तर पर सहेजा है । कहीं भी घटने वाली घटना मन प्रांगण में घटती है और तन-मन मथ देती है । 'ऐ मेरे गांव की सड़क' में नागरिक संवेदना के वशीभूत कवि को अपने गांव की सड़कों का स्वभाव संत समान सहिष्णु लगता है । 'चेतना' में कवि ने कर्मण्य बने रह कर जीवन पथ की दुर्गमता के भय को परास्त करने का प्रयास किया है ।

मुहम्मद परवेज़ की 'अनुभूतियों से' कविता में आस्था के संघर्षरत बिम्ब उभरे हैं जिसके पांव स्थिरता की तलाश में उलझते हुए मुंह के बल गिर जाते हैं और 'मुस्कान वृत्त के पीछे' कविता में आधुनिक जीवन की विषमता के समक्ष पुरा–ऐतिहासिक तत्वों की निरर्थकता सिद्ध की है—

"मेरी अस्थियों की नुमाइश पर
(कुछ बन पड़े)
मुझे संकोच नहीं, लेकिन
मैं दधीचि नहीं ......
काश ! कुछ बन पड़ता ।"

मुहम्मद परवेज़ की कविता की तरह डॉ० नीना कौल की कविता 'रंगीन

दायरे' तथा महाराज कृष्ण शाह की कविता 'मकबरा' जीवन की परख की कविताएं हैं जहां व्यक्ति चाह कर भी जीवन नहीं छोड़ पाता बल्कि अतीत को दुहरा कर वर्तमान को और भी बोझिल बना लेता है। 'भटकाव' में शाह ने नदी की विराटता से जीवन का संबंध जोड़ा है कि सांसारिक ऐषणाएं व्यक्ति को नदी की तरह ही प्यासा रखती हैं और फिर रेतीले मैदान के प्यासे के लिए बूंद ही पर्याप्त है—

"दूर तक भटकती नदी में
केवल प्यास के स्वर हैं
और इसका सही अन्वेषण
मृत्यु है ।"

महाराज कृष्ण शाह की कविताओं में प्रायः एकान्तिक अनुभूतियां ही प्रमुख रहती हैं। 'पुल' कविता नितान्त प्रतीकात्मक है। यहां पुल कविता राजनीतिक विघटन को भी चरितार्थ करती है तो प्रेम संबंधों के विघटन को भी। सामाजिक आक्षेपों तथा प्रतिबन्धों स्वरूप प्रेम संबंधों का विघटन हो जाता है इनका विश्वास मात्र स्वार्थ भाव का परिचायक बन जाता है सो कवि की दृष्टि में भंवर में डूबने से बेहत्तर है नदी सूखने तक इंतजार करना ।

"हां—
अब नदी सूखने का
इन्तजार है
पुल से विश्वास की
संभावना ढह गई ।

वीणा चन्ना की कविता 'बताओ कोई' में एक सामयिक अनुभूति का चित्रण है जिसे उन्होंने जीवनोपलब्धि माना है। जो बात अंधेरे की अनुभूति देकर बेड़ियां पहना देती है वही बात उजाले की अनुभूति से तन-प्राण सुवासित कर देती है। कविता बेतुकी है। डर एवं भय की स्थिति जो कविता के प्रथम चरण में प्रभावोत्पादक लगती है वही बाद में पाठक को चौंका देती है।

बिम्ब बोध की अभिव्यक्ति में सुनी संतोष ज़ारू की कविता 'बिखराव' में इच्छा-कुसुम के जन्म लेने से बिखरने तक का लेखा-जोखा है। लय के अभाव में भाव-प्रवण होकर भी कविता पाठक को भावविह्वल नहीं कर पाती। इच्छा-

कुसुम, कल्पना का टॉनिक, हांफती तमन्नाएं आदि शब्द प्रतीकात्मक हैं।

वितस्ता के एक अन्य नवोदित हस्ताक्षर कौशल्या चल्लू की कविता 'रेगिस्तानी चेतना' छायावादी कविता की भाव-भूमि की याद ताज़ा करवा देती है। इसमें 'विरह में चिर' रहने वाला स्वर अनुगुंजित होता है और इस सांसारिक मरुस्थल में अभावों से जर्जर आत्मा पर हम अन्वेषण करना चाहते हैं तो स्वयं आलपीन से बंध कर रह जाते हैं साथ ही नित्यप्रति मन-प्रांगण में उफनती तमन्नाएं अदृश्य सत्ता द्वारा किडनैप कर ली जाती हैं।

वितस्ता परिवार के सभी कवि जो जीवन को ऐषणामय सिद्ध करते हैं तथा जीवनसंघर्ष से तंग आकर छुटकारा पाना चाहते हैं उनका समाधान अशोक कुमार तिक्कू की 'कविता संघर्ष की कामना से छूटे' कविता की निम्नांकित पंक्ति में मिल जाता है जहां वह भाग्य पर आश्रित हो उठते है :—

> **"सभी भाग्य के पीछे हैं भागते**
> **संघर्ष की कमान से छूटे ।।"**

तिक्कू की कविता की इन पंक्तियों को पढ़ कर संकलन की भूमिका के अन्तर्गत लिखा गया डॉ० अयूब 'प्रेमी' का कथन तर्कसंगत लगता है। "इन कविताओं में जीवन शक्ति को नकारा नहीं गया बल्कि जिन कवियों ने निरर्थकता की अभिव्यक्ति की है, उन्होंने भी कविता की जीवन-शक्ति को स्वीकारा है।" अशोक कुमार तिक्कू की 'मैं' कविता में अस्तित्वबोध और अजनबीपन का बोध साकार हुआ हैं।

इस संग्रह में कुमारी क्षमा कौल की दो कविताएं हैं—'तथाकथित ईश्वर' और 'एक अनुभूति'। क्षमा कौल की कविता—'तथाकथित ईश्वर' इस संग्रह की अत्यन्त रोचक, व्यंग्यात्मक और प्रभावोत्पादक कविता है। आज बदले हुए जीवन तथा मूल्यों की दुराव-पोजमयी स्थिति में व्यक्ति का यह चिरजीवी विश्वास खंडित हो गया है कि ईश्वर अदृश्य रूप में सत्ताधारी बन कर रक्षा करता है। कवयित्री का विश्वास अटल है, कबीर तथा जायसी जैसे निर्गुण कवियों की तरह प्रेमिका रूप में आरती-अर्चना करती है परन्तु जब उसने सुना कि कल ईश्वर ने खूब शराब पी ली तो उसका विश्वास चरमराने लगा और उस समय पूर्णतया खंडित हो गया जब उसने मंदिर में उसे किसी रमणी के साथ प्रेमालाप करते देखा :—

"तुम किसी रमणी के—
अलकांतों में उलझे थे।
पहले क्षण मेरा दम-सा निकल गया
और पैरों तले की मिट्टी खिसक गई,
दूसरे क्षण अनायास ही मेरे मुख से निकला—
कितने लम्पट हो तुम ईश्वर !"

स्पष्ट है कि इस संकलन की सभी कविताएं यद्यपि कश्मीर के परिवेश में जन्म लेती हैं फिर भी इनका धरातल बड़ा व्यापक है क्योंकि इन युवा कवियों ने जीवन के विविध संदर्भों से जुड़ कर काव्य-सृजन का प्रयास किया है तथा जीवन और कला का तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा की है।







(Dr. R. L. Shant)
Professor of Hindi
Bemina College Srinagar

A Publication of :
J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu.